वैचित्र्य-चित्रण



महावीर प्रसाद द्विवेदी

साहित्य-सुमन-माला पुष्प—१

वैचित्र्य-चित्रण

लेखक

साहित्य-महारथी

श्रीमहावीरप्रसाद द्विवेदी

संपादक

श्रीप्रेमचंद

प्रकाशक

नवलकिशोर-प्रस

लखनऊ

प्रथम सस्करण] १९२८ [मूल्य ॥=)

मुद्रक और प्रकाशक
श्रीकेसरीदास सेठ
सुपरिंटेंडेंट
नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ

संपादकीय वक्तव्य

भारतवर्ष में नवलकिशोर-प्रेस ही एक ऐसी संस्था है, जिसने पहले-पहल हिंदी में पुस्तक-प्रकाशन का कार्य शुरू किया और अब तक पूरे उत्साह के साथ करता जा रहा है। पिछले पचहत्तर वर्षों से जिस उत्साह के साथ इस प्रेस ने प्रकाशन का कार्य किया है, वह किसी भी भारतवासी से छिपा नहीं है। यहाँ की प्रकाशित पुस्तकों का गाँव-गाँव और घर-घर में प्रचार है, यही इसके उत्कर्ष का ज्वलंत प्रमाण है। अब तक जितनी बड़ी-बड़ी हिंदी और संस्कृत की पुस्तकें इस प्रेस से प्रकाशित हुई हैं, उतनी अन्य किसी भी भारतवर्ष के प्रेस से नहीं हुईं।

अब नवलकिशोर-प्रेस के उदार और विद्यानुरागी स्वामी श्रीविष्णु-नारायणजी भार्गव ने साहित्यिक क्षेत्र को और भी विस्तृत करने का विचार किया है और इसी उद्देश्य से उन्होंने माधुरी-सी सर्वश्रेष्ठ मासिक पत्रिका का जन्म दिया, जो इस समय हिंदी भाषा-साहित्य की यथासाध्य सेवा कर रही है। आपकी चिरकाल से इच्छा थी कि हिंदी-भाषा में एक ऐसी ग्रंथ-माला निकाली जाय, जिसमें होम युनिवर्सिटी लाइब्रेरी के ढंग के समान आकार और विविध विषय के उपयोगी ग्रंथ प्रकाशित किए जायँ। अब उस विचार को आपने कार्य रूप में परिणत करने का संकल्प किया है और साहित्य-सुमन-माला के नाम से एक ग्रंथ-माला निकाल रहे हैं।

इस माला में एक आकार-प्रकार की प्रायः मौलिक पुस्तकें ही निकाली जावेंगी। पृष्ठ-संख्या प्रत्येक पुस्तक की दो और तीन सौ पृष्ठों की रक्खी जायगी, जिससे जनता में इस माला की पुस्तकों का

प्रचार बढ़ और लोग इसकी प्रत्येक पुस्तक को ख़रीदकर पढ़ सकें। पुस्तकों के मूल्य पर भी पूरा नियंत्रण रक्खा जायगा। अच्छे काग़ज़ पर पुस्तक की छपाई की जायगी और यथास्थान चित्र देकर पुस्तक को सुंदर बनाने का भी प्रयत्न किया जायगा। इस माला में विज्ञान, इतिहास, साहित्य, कृषि, वाणिज्य, भ्रमण और विनोदात्मक पुस्तकों को यथेष्ट स्थान दिया जायगा। पुस्तक की भाषा भी यथासंभव सरल रक्खी जायगी, जिससे प्रत्येक नर-नारी, बालक-बालिकाएँ सरलता से विना किसी की सहायता लिए ही पढ़कर उनका आनंद उठा सकें। वीर-रस और यात्रा-संबंधी पुस्तकों को प्रकाशित करने की ओर विशेष रूप से दिया ध्यान जायगा।

माला को शुरू करते हुए सर्वप्रथम हिंदी-भाषा के आचार्य पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी कृत 'वैचित्र्य-चित्रण' को भेंट करने में हम अपना गौरव समझते हैं। द्विवेदीजी की लेखनी के संबंध में कुछ लिखना सूर्य को दीपक दिखाना है। 'वैचित्र्य-चित्रण' आपके चिरकाल के स्वाध्याय, अनुभव और अनुशीलन का उदाहरण है। इस छोटी-सी पुस्तक में पाठक को वैज्ञानिक, भौगोलिक और पुरातत्त्व संबंधी अनुसंधानों का जैसा ज्ञान प्राप्त होगा, वह शायद बड़ी-बड़ी पुस्तकों के पढ़ने से भी न हो। द्विवेदीजी की यह विशेषता है कि वह विशद विषयों को इतने थोड़े-से शब्दों में समझा देते हैं कि आश्चर्य होता है। हमें पूर्ण आशा है कि पाठक इस पुस्तक का आदर करेंगे।

भवदीय—

प्रेमचंद

निवेदन

अँगरेज़ी-भाषा में ऐसी अनेक पुस्तकें हैं, जिनमें अद्‌भुत-अद्‌भुत और विलक्षण-विलक्षण वस्तुओं तथा जीव-जंतुओं के वर्णन हैं। ईश्वर की यह परमाश्चर्यमयी सृष्टि अनंत आश्चर्य-जनक दृश्यों और प्राणधारियों की खान है। उनके अस्तित्व और गुण-धर्म आदि की अवगति से ज्ञान-वृद्धि और मनोरंजन तो होता ही है, जगन्नियंता के कौशल को देखकर उसके विषय में भक्ति के भाव का उन्मेष भी होता है। क्योंकि किसी की रचना या कृति के अवलोकन से रचनाकार या कर्त्ता का ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा मानव-हृदय में उत्पन्न हुए विना नहीं रहती। अतएव संसार के विलक्षण जीव-जंतुओं आदि के विषय में जानकारी प्राप्त करने की चेष्टा निरर्थक नहीं कही जा सकती। इसी उद्देश्य की यत्किंचित् सिद्धि को ध्यान में रखकर यह संग्रह प्रकाशित किया जाता है।

इसमें जिन लेखों का संग्रह है, वे समय-समय पर "सरस्वती" में प्रकाशित हो चुके हैं। उनके प्रकाशन का समय प्रत्येक लेख के नीचे दे दिया गया है। मासिक पुस्तकों में बिखरे हुए पड़े रहने से फुटकर लेख नष्ट नहीं, तो दुष्प्राप्य अवश्य ही हो जाते हैं। परंतु यदि वे पुस्तकरूपिणी मंजूषा में बंद कर दिए जायँ, तो सदा सुलभ रहते हैं। इसी से नरों, वानरों, जलचरों, स्थलचरों और उद्भिज्जों

आदि के संबंध में ज्ञात हुई वैचित्र्य-दर्शक बातें, अन्य भाषाओं की भिन्न-भिन्न पुस्तकों से उद्धृत करके, जो लेख संग्रहकार ने पाठकों के मनोरंजन के लिये लिखे थे, वे सब इस पुस्तक में एकत्र रख दिए गए हैं। आशा है, इनके पाठ से विशेषज्ञों और ज्ञान-वृद्धों की न सही, तदितर जनों के कौतूहल की कुछ-न-कुछ निवृत्ति अवश्य ही होगी।

दौलतपुर (रायबरेली)
१४ एप्रिल, १६२८ ई०

महावीरप्रसाद द्विवेदी

विषय-सूची

नंबर	लेख-नाम	पृष्ठांक

वैचित्र्य-चित्रण

१—नराध्याय

अफ़रीका के खर्वाकार जंगली मनुष्य

(१)

अफ़रीका आश्चर्यों का घर है। वहाँ की सभी बातें अजीब हैं। वहाँ के मनुष्य, वहाँ के पशु-पत्ती, वहाँ के अगम्य जंगल और वहाँ के हज़ारों कोस-व्यापी मरुस्थल अचरज से भरे हुए हैं। १८८८ ईसवी में स्टैनली साहब ने इस आश्चर्यमयी भयावनी भूमि में, ईजिप्ट से लेकर विक्टोरिया न्यान्ज़ा झील तक, बहुत लंबा सफ़र किया। अपनी इस कौतुकपूर्ण यात्रा का वर्णन उन्होंने एक पुस्तक में लिखा है। इस पुस्तक में अफ़रीका के खर्वाकार जंगली लोगों का भी वृत्तांत है। ये असभ्य जंगली बहुत छोटे होते हैं। परन्तु ठिंगने होकर भी वे बड़े चालाक और शिकारी होते हैं।

१८८८ ईसवी के मार्च महीने में, जिस समय स्टैनली साहब

इपोटो नामक जगह से कुछ दूरी पर ख़ेमे डाले हुए थे, उनके पास एक खर्वाकार स्त्री लाई गई। जहाँ पर ख़ेमे गड़े थे उससे १४ मील पर इन जंगली लोगों के रहने की जगह थी। ये लोग बड़े ज़बरदस्त चोर होते हैं। स्टैनली साहब के ख़ेमे तक ये धावा मारते थे और खाने-पीने की चीज़ें चुरा ले जाते थे। यह स्त्री इंदे-करु नामक नगर के खर्वाकार राजा की रानी थी।

यह प्रायः नग्न थी। इसके गले में पालिश किए हुए लोहे की पतली-पतली हँसुलियाँ थीं, जिनके किनारे, दोनों छोरों पर, घड़ी की कमानी के समान, घेरदार थे। उसके कानों से लोहे की तीन-तीन मोटी-मोटी बालियाँ लटकती थीं। बाजूबंद भी उसने लोहे ही के पहन रक्खे थे। उसका रंग भूरा था; मुँह फैला हुआ गोल था; आँखें बड़ी-बड़ी थीं; होंठ छोटे परंतु भरे हुए थे। कमर में वह छाल का एक छोटा-सा कपड़ा लपेटे हुए थी। यद्यपि वह प्रायः नग्न थी, तथापि उसके चेहरे से शालीनता झलकती थी। वह सब प्रकार शांत थी। उँचाई में वह ४ फ़ुट ४ इंच थी। उमर उसकी कोई १९ वर्ष की होगी। उसे देखकर चित्त बहुत प्रसन्न होता था।

इस प्रकार की एक स्त्री स्टैनली साहब के साथी, सर्जन पार्क के साथ बहुत दिन तक थी। वह उनका बोझा उठाती थी; जहाँ पड़ाव पड़ता था वहाँ लकड़ियाँ इकट्ठी करती थी; छोलदारी के दरवाज़े बैठी हुई रखवाली करती थी; चाय बनाना सीख गई थी, और रोज़ बनाकर सर्जन पार्क को पिलाती भी थी। वह उनके अत्यंत वशीभूत थी; जी-जान से उनकी सेवा करती थी; और अनजान आदमी को कभी उनके असबाब के पास नहीं फटकने देती थी।

अक्तूबर १८८८ में स्टैनली साहब बोडो नामक क़िले को जा

रहे थे। २८ अक्तूबर को वे अवाटिको स्थान में पहुँचे । वहाँ पर एक स्त्री-पुरुष का जोड़ा उनके आदमी पकड़ लाए। ये दोनों खर्वाकार जंगली थे। इस वामनरूप जंगली के विषय में जो कुछ स्टैनली साहब ने लिखा है उसका आशय उन्हीं के मुँह से सुनिए—

"इसकी लंबाई केवल ४ फुट थी ; सिर २०$\frac{1}{8}$ इंच था ; छाती २५$\frac{1}{2}$ इंच थी ; टाँगें २२ इंच थीं; भुजाएँ १९$\frac{3}{4}$ इंच थीं। यह पूरा जवान था। उम्र इसकी कोई २१ वर्ष होगी। इसका रंग ताँबे का जैसा था। इसके सिर पर एक अजीब क़िसम की टोपी थी ; उस पर तोते के परों का एक गुच्छा था। यह टोपी इसे या तो किसी ने तोहफ़े के तौर पर दी होगी, या इसे इसने कहीं से चुरा लिया होगा। छाल के कपड़े के एक लंबे टुकड़े की लँगोटी इसने पहन रक्खी थी। उसके सिवा और यह बिलकुल दिगंबर था। इसके एक हाथ में धनुर्बाण था, और दूसरे में भाला । इसके हाथ बहुत नाज़ुक जान पड़ते थे। मालूम होता था कि केले छीलने का काम इससे लिया जाता था।"

"इस वामन को देखकर मेरे मन में जो-जो भावनाएँ हुईं उनका अनुमान कोई नहीं कर सकता। यह बावन अंगुल का शरीर प्राचीन से प्राचीन मनुष्यों के वंश से उत्पन्न हुआ है । हज़ारों वर्ष पहले इसके पूर्वज जिस दशा और जिस भेष में थे उसी दशा और उसी भेष में यह भी है। इसको देखा, मानो कई हज़ार वर्ष पहले हुए मनुष्यों को देख लिया । जब से इनके वंश की उत्पत्ति हुई, तब से ये बराबर इस जंगली अफ़रीका में सुख से निवास कर रहे हैं। ईजिप्ट, आसीरिया, बाबुल, फ़ारिस, ग्रीस और रोम का उत्कर्ष भी हुआ और पतन भी हुआ। उनकी पुरानी संपत्ति, उनकी पुरानी प्रभुता और उनके पुराने तर्ज़ के मनुष्य एक भी नहीं; परंतु ये खर्वाकार जंगली पूर्ववत् बने हुए हैं। इनमें

कोई अंतर नहीं हुआ। नाइज़र नदी के किनारे से, धीरे-धीरे, ये अब मध्य अफ़रीका के इन अगम्य जंगलों में आ गए हैं, और इधर-उधर पत्तों के झोपड़े बनाकर पूर्ववत् शिकार करते फिरते हैं। इनके सजातीय केप-कालोनी में बुशम्यन कहलाते हैं; लुलुंगू की तराई में बटवा कहलाते हैं; मोनबुटू में अक्का कहलाते हैं; और शहरू के आसपास बमबुट्टी कहलाते हैं।"

"सूदान और जैंजीबार के रहनेवाले, जो मेरे साथ थे, उनके पास खड़े हुए इस छोटे से मनुष्य के बच्चे के मन में अनेक प्रकार क विचार आते रहे होंगे। उसके चेहरे को देखने ही से जान पड़ता था कि वह बड़े सोच-विचार में था। भीमाकार मनुष्यों को अपने चारों ओर देखकर, अपनी भावी दशा का विचार करके और प्राण बचने की आशा से उत्कंठित होकर इसकी अजब हालत हो रही थी। अपने से इतने ऊँचे और मोटे मनुष्यों को देखकर वह कहता होगा कि ये कहाँ से आए! क्या ये स्वर्ग से आ गए? अथवा पाताल से? ये मुझे क्या करेंगे? क्या मुझे मार डालेंगे? कैसे? भूनकर, जैसे हम लोग शिकार भूनते हैं? अथवा किसी बड़े बरतन में डालकर ये मुझे उबालेंगे?

"इस प्रकार के विचार जब इस मनुष्य के मन में आ रहे थे, तब मैंने इसको अपने पास बिठलाया; इसकी पीठ ठोंकी; इसके बदन पर हाथ फेरा। इस तरह इसे कुछ-कुछ निर्भय करके मैंन इसे केले खाने को दिए। केलों को उसने बड़ी प्रसन्नता से लिया। उन्हें लेकर वह मुसकुराया। मानो उसने इस तरह अपनी कृतज्ञता प्रकट की। यह बौना बड़ा चालाक था। इससे हम लोगों ने संज्ञा से बातचीत की। हमने पूछा, यहाँ से गाँव कितनी दूर है, किस तरफ़ है; वहाँ खाने को कुछ मिलेगा या नहीं; रास्ता कैसा है; चोरों का डर तो नहीं। इन प्रश्नों का उत्तर उसने संज्ञाओं

ही से दिया। परंतु ऐसी योग्यता से दिया कि उनको समझने में ज़रा भी कठिनाई नहीं पड़ी।"

"गेयू और इटूरी नदियों के बीच में ये छोटे आकार के जंगली अधिकता से रहते हैं। ये बड़े ही प्रवीण शिकारी होते हैं। जिस जंगल में ये रहते हैं, उसे थोड़े ही दिनों में ये पशु-पक्षी-हीन कर देते हैं। अतएव शीघ्र ही इन्हें एक जगह छोड़कर दूसरी को, और दूसरी छोड़कर तीसरी को, जाना पड़ता है। इनके भाले बड़े ही भयंकर होते हैं। उनमें जो लोहे का फल लगा रहता है वह बहुत लंबा और तेज़ होता है। इनका मुख्य शस्त्र धनुर्बाण है। इनके बाणों की नोकें सैकड़ों तरह की होती हैं। इन बाणों से ये लोग हाथी तक मार डालते हैं और सैकड़ों मन हाथीदाँत इकट्ठा करके केले, तंबाकू, आलू, भाले और बाणों के बदले दे डालते हैं। ये अपने बाणों की नोकों में एक बड़ा ही भीषण विष लगाते हैं। इनके बाण की नोक का स्पर्श रुधिर से हो जाने पर कोई जीव जीता नहीं रह सकता। बाण लगते ही आदमी बेहोश हो जाता है; कलेजा धड़कने लगता है; पसीने की धारा छूटती है। यह होते ही होते शीघ्र ही प्राणवायु निकल जाता है। एक मनुष्य की भुजा में केवल आलपीन की नोक के बराबर छेद हो गया था। इतने ही से वह एक क्षण भर में मर गया। एक मनुष्य की मृत्यु सवा घंटे में हो गई। एक स्त्री को लोग उठाकर जबतक सौ क़दम दूर ले जायँ तबतक वह निर्जीव हो गई। एक मनुष्य तीन घंटे में और एक सौ घंटे में मरा। विष जितना ही ताज़ा होता है उतनी ही शीघ्र मृत्यु होती है। ऐसे ज्वलंत कालकूट विष से यदि शेर, हाथी और गैंड़े मरकर भूमि पर लोट जायँ तो क्या आश्चर्य। ईश्वर ने इन अशक्त और खर्वाकार जंगली मनुष्यों को ऐसे विकराल बाण चलाने का ज्ञान देकर उनकी अशक्तता

और खर्वाकृति की न्यूनता को अपेक्षा से अधिक पूरा कर दिया है।"

[फरवरी १६०४

---

(२)

स्टैनली साहब का लिखा हुआ वृत्तांत बड़ा कौतूहलजनक है। उनके लेख का कुछ और भी अंश नीचे दिया जाता है। उसे भी उन्हीं के मुख से कहा गया समझिए--

हमने अफ़रीका महादेश के समस्त पर्वत, मरुभूमि, वन इत्यादि में बहुत वर्षों तक भ्रमण करने के बाद जो अभिज्ञता प्राप्त की है उसे अपने एक ग्रंथ में प्रकाशित कर चुके हैं। अफ़रीका के बौनों के संबंध में हमारे मन में पहले साधारणतः कई प्रश्न उठा करते थे। ये बौने सचमुच मनुष्य श्रेणी के हैं या नहीं? मनुष्यों की तरह इनमें युक्ति, तर्क और चिंता-शक्ति है या नहीं? ये जो कुछ देखते हैं, उसे प्रकाशित कर सकते हैं या नहीं? अभिज्ञता प्राप्त करने पर हम इस सिद्धांत पर पहुँचे हैं कि बौनों में और हममें कोई विशेष भेद नहीं। जैसे हम विचार और वार्तालाप करते हैं वैसे ही वे भी सोचते, विचारते और बातचीत करते हैं। डारविन साहब कुछ ही क्यों न कहें, इसमें कोई संदेह नहीं कि मनुष्य सदा से मनुष्य है। वह बंदर की औलाद नहीं; मनुष्य का पार्थक्य अन्य जंतुओं से सदा से चला आता है। प्राचीन काल में जब हमारे पूर्व-पुरुष पर्वत-गह्वरों में वास करते और पेड़ों की छाल पहनते थे, तब भी उनमें और अन्य जीवों में बड़ा भेद था। हमने मिलान करके देखा है कि बौनों की बुद्धि हम लोगों की

बुद्धि से किसी तरह कम नहीं। युग-युगांतर से इनकी दशा ऐसी ही रही है। ईसा से चार सौ पैंतालीस वर्ष पहले, हिरोडोटस के समय में, इन लोगों की जैसी दशा थी वैसी ही आज भी है। उस समय तथा उसके पहले वे ऐलबर्ट झील के आसपास रहते थे। इन बौने आदमियों का आविष्कार पहलेपहल हिरोडोटस तथा एंड्रू बाटिल ने किया था। १८७६ ईसवी में हमने पहलेपहल एक बौना मनुष्य देखा; परंतु उसको अच्छी तरह न देख पाए। १८८१ ईसवी में, जब हम एमिलपाशा को छुड़ाने के लिये फ़ौज लेकर अफ़रीका के जंगलों में गए थे, भिन्न-भिन्न उम्र के कोई पचास बौनों को वहाँ से पकड़ लाए थे। अफ़रीका में इहूरियो और इतूरी नाम की दो नदियाँ हैं। इन्हीं दोनों नदियों के बीच के प्रदेश में बौने रहते हैं। इस प्रदेश का विस्तार कोई तीस हज़ार मील है। ऊपर लिखे हुए बौनों को जब हमने पकड़ा था, तब उनके बहुत से गाँव देखे थे और उनके संबंध में बहुत सी बातें भी जानी थीं। एक गाँव को पार करने में कोई डेढ़-दो घंटे समय लगता है।

जिन जंगलों में ये बौने रहते हैं, उनके बाहर अपेक्षाकृत सुसभ्य कृषक बसते हैं। बौनों की अपेक्षा वे ऊँचे, बलिष्ठ और सुंदर होते हैं। शरीर की शोभा बढ़ाने के लिये वे मनुष्यों के दाँत और बंदरों की हड्डियाँ आदि की मालाएँ बनाकर पहनते हैं। साधारण मनुष्यों की तरह बौनों की ऊँचाई भी न्यूनाधिक होती है। बौनों की अधिक-से-अधिक ऊँचाई पचास इंच होती है। सैकड़ों ऐसे भी जवान बौने देखने में आते हैं, जो केवल तेंतीस इंच लंबे होते हैं।

हमने पहले सुना था कि बौने—योद्धा खूब लंबी दाढ़ी रखते हैं; पर अनुसंधान से मालूम हुआ कि केवल एक को छोड़कर

और किसी के दाढ़ी नहीं। उनके शरीर का चमड़ा इतना ढीला होता है कि सहज ही में उँगली से पकड़कर खींचा जा सकता है।

अस्त्र, शस्त्र, गहना इत्यादि अपने इस्तेमाल के कोई भी पदार्थ ये स्वयं नहीं प्रस्तुत कर सकते। जंगल के बाहर जो कृषक रहते हैं, उन्हीं से ये लोग अन्य वस्तुओं के बदले में ये पदार्थ ले आते या चुरा लाते हैं। शहद, जंगली जानवरों का मांस, व्याघ्र-चर्म, पक्षियों के पर आदि ही इनके परिवर्तन के मुख्य पदार्थ हैं। अन्य मांस जब नहीं मिलता, तब ये लोग गढ़ा खोद-कर हाथियों या जंगली भैंसों का शिकार करते हैं और उनके मांस तथा हड्डियों के बदले में कृषकों से तीर-कमान, लोहे के गहने, कमरबंद, तरकस, छुरे, थैले इत्यादि पदार्थ ले आते हैं। कच्चे-पक्के केले तथा केले की शराब ये लोग बहुत पसंद करते हैं। इसी शराब को पीकर ये लोग आनंद से नृत्य करते हैं। यही शराब इनकी विलासता की सामग्री है। ये लोग नाना प्रकार के जंगली फल भी खाते हैं। उनमें से कुछ इतने मीठे और मज़ेदार होते हैं कि पृथ्वी की कोई भी सभ्य जाति उनका आदर कर सकती है। इसके सिवा जिन फलों को ये खाते हैं उनमें से कोई-कोई इतने विषाक्त भी होते हैं कि यदि कोई अन्य मनुष्य उनको खा ले, तो तुरंत ही मर जाय। मांस को ये अच्छी तरह पकाकर नहीं खाते; केवल उसको सेंक लेते हैं। नहीं कह सकते कि ये उसको पकाना ही नहीं जानते या इनको कच्चा ही मांस अच्छा लगता है। बौने लोग नर-मांस को बड़े प्रेम से खाते हैं। हमने देखा है कि ये लोग क़ब्र खोदकर मृत देह को उठा ले गए हैं। हमारे दल के लोगों को मारकर भी इन्होंने खाया है। एक दिन हमने देखा कि एक आहत स्त्री को घेरे हुए कुछ बौने बैठे हैं और उसके चारों ओर अग्नि जल रही है। प्रत्येक बौने

के हाथ में एक-एक बरतन है। उनके बैठने के ढंग ही से मालूम होता था कि उस स्त्री का मांस खाने का बंदोबस्त ये लोग कर रहे हैं। हमने अपने क़ैदियों से पूछकर निश्चय कर लिया है कि अफ़रीका के बौने नर-मांस-भक्षी हैं।

बौने खेती नहीं करते और न कोई अन्य पदार्थ ही उत्पन्न करते हैं। जंगल के बाहरवाले कृषक तंबाकू, केला इत्यादि उत्पन्न करते हैं। उन्हीं को चुराकर बौने अपनी आवश्यकताओं को पूर्ण करते हैं। इन लोगों के अस्त्र-शस्त्र, बरछे, तीर, कमान और छुरे हैं। धनुष के दोनों किनारों पर ये रेशम के फूल लगाते हैं और बीच में बंदर की पूँछ बाँधते हैं। यह पूँछ धनुष को कड़ा बनाए रखने के लिये व्यवहार की जाती है। तीरों की लंबाई कोई अठारह इंच होती है। उनका अगला सिरा विष से बुझा रहता है। इन तीरों को बड़ी सावधानी से छूना चाहिए; क्योंकि सूखा हुआ विष भी बड़ा भयानक होता है। इस विष के प्रयोग से बड़ी ही भीषण-यंत्रणा-दायक मृत्यु होती है। ईश्वर न करे किसी की मृत्यु इससे हो। इस विष से मरने की अपेक्षा अन्य सब प्रकार से मरना मनुष्य सादर स्वीकार कर सकता है। इस विष-प्रयोग की बात हम पहले न जानते थे। १८८७ ईसवी में इन बौनों के साथ एक क्षुद्र युद्ध में हमारे कई सिपाही सामान्य रूप से घायल हुए। हमने उनका तुरंत इलाज किया; परंतु तब भी वे न बच सके। यदि वे तीर विषाक्त न होते, तो विना किसी चिकित्सा ही के वे अच्छे हो जाते। घायलों में से कई एक धनुष्टंकार रोग से पीड़ित होकर मरे। कई एक के आहत स्थान सड़ गए और उनकी बुरी मृत्यु हुई। जो लोग कुछ दिन बचे भी उनका रक्त इतना दूषित हो गया कि वे अपने जीवन को बोझ समझने लगे। उनकी समझ में ऐसे जीवन से मृत्यु ही भली।

इस विष का प्रतिकार करनेवाली ओषधि हमने कोई एक साल में ढूँढ़ निकाली। बहुत परीक्षा करने के बाद यह मालूम हुआ कि आहत स्थान के निकट एमनकार्ब (Ammon Carb) ओषधि का प्रवेश करने से बड़ा लाभ होता है। ये लोग अपने विष को जिस वस्तु से तैयार करते हैं उससे डाक्टर प्रोज़र ने स्ट्रोपांथिन (Stropanthin) नाम की एक ओषधि तैयार की है। उसकी १/१० ग्रेन मात्रा व्यवहार करने से मृत्यु हो सकती है।

बौने मनुष्य दो भागों में विभक्त हैं। एक दल के लोगों का रंग कुछ-कुछ लाल होता है; दूसरे दलवाले बेहद काले होते हैं। दोनों ही दलवालों का मस्तक चौड़ा और ठुड्ढी बड़ी होती है। उनके हाथ छोटे और चिकने तथा पैर टेढ़े होते हैं। तिस पर भी कितने ही बौनों का चेहरा खूबसूरत होता है।

बौनों के सरदार की एक स्त्री का रूप वर्णन करने योग्य है। उसके शरीर का रंग अत्यंत उज्ज्वल था। वह बहुत गहने न पहने थी; केवल लोहे के कुछ बाले और नाक में नथ थी। उसके छोटे-छोटे काले बालों में एक प्रकार का तेल लगा हुआ था। इससे उसका मुख-सौंदर्य और भी बढ़ गया था। वह खूब शांत थी। वह जिस कार्य पर नियुक्त थी, उसको बड़े मनोयोग तथा अध्यवसाय के साथ करती थी।

ये बौने हज़ारों वर्ष से एक ही अवस्था में हैं। इसका कारण कदाचित् यह होगा कि ये सभ्य मनुष्यों के साथ नहीं मिलते जुलते। शिक्षा पाने पर ये लोग भी योरप और अमेरिका के निवासियों की तरह सभ्य हो सकते हैं। एक चालीस वर्ष की उम्रवाली स्त्री हमारे दल में रहने से पाक-विद्या में ऐसी निपुण हो गई थी कि योरप का कोई प्रथम श्रेणी का बावर्ची भी उसका मुक़ाबला न कर सकता था। वह बहुत सफ़ाई से रहती थी। साफ़ कपड़े

पहनती और कोई भी वस्तु विना हाथ धोए न छूती थी। उसमें यदि कोई दोष था तो यह कि वह बड़ी वाचाल थी। वह अपनी जिह्वा को थोड़ी देर भी न रोक सकती थी। यह न समझिए कि वह कोई बुरी बात कहती थी; उसकी बातें बड़ी ही रहस्यपूर्ण होती थीं।

हमारे क़ैदियों में एक अठारह वर्ष का बालक भी था। वह बड़ा अल्पभाषी था। दिन-रात वह अपने काम ही में लगा रहता था; किसी से बातचीत न करता था। यदि कोई उससे प्रश्न करता, तो वह लज्जा के मारे मर-सा जाता था। कोई उस पर यदि अत्याचार भी करता, तो वह उसे चुपचाप सह लेता था।

मतलब यह कि असभ्य बौने शिक्षा पाने पर थोड़े ही दिनों में सभ्य हो सकते हैं। यद्यपि वे अपने व्यवहार की एक भी वस्तु नहीं बना सकते तथापि उनमें अन्य मनुष्यों की तरह सज्ञानता ज़रूर है। ये लोग प्रेम करना और प्रेम का बदला देना भी जानते हैं। ये बड़े ही साहसी तथा अध्यवसायी होते हैं। वन में सिंह और बाघ से भी नहीं डरते और चतुरता में चिंपैंज़ी बंदर को भी इनसे हार माननी पड़ती है। हमें योरपवालों के ऐसे बहुत से दृष्टांत मालूम हैं, जो जंगली भैंसों और हाथियों के द्वारा हत हुए हैं। पर ये क्षुद्र असभ्य बौने इन भीषण जंतुओं को सहज ही में मार डालते हैं।

बौने लोगों के गाँव बड़े-बड़े पेड़ों के नीचे होते हैं। हमने एक ऐसा गाँव देखा है। उसमें छियानबे घर थे। वे छोटे घर बहुत ही साफ़ सुथरे थे। चलने-फिरने से बीच में जो रास्ता बन गया था वह पाँच-छः फुट से अधिक चौड़ा न था। जिस गाँव का रास्ता जितना ही अधिक चौड़ा होता है उसकी बस्ती उतनी ही अधिक होती है। घर के दोनों ओर दरवाज़े होते हैं। दरवाज़े तीन फुट से

अधिक ऊँचे नहीं होते। आक्रमण के समय घर से बाहर भागने के लिये गुप्त द्वार भी होते हैं। गाँव के सब घर वृत्ताकार बने होते हैं। वृत्त के बीच में उनके राजा या सरदार का घर होता है। राजा की चौकसी रखना प्रत्येक बौने का मुख्य कर्तव्य है। घरों की उँचाई चार फुट, लंबाई आठ-दस फुट और चौड़ाई छः-सात फुट होती है। पेड़ों के बड़े-बड़े पत्ते ही उत्तम बिछौने समझे जाते हैं।

सबेरा होने पर प्रायः सभी बौने भोजन की सामग्री एकत्र करने के लिये घर से बाहर निकलते हैं। पहले दिन के बनाए हुए जालों और गढ़ों को ढूँढ़ना ही उनका प्रथम कार्य होता है। घरों में जो लोग रह जाते हैं वह गाँव की रखवाली करते हैं।

इन बौनों के साथ कभी-कभी बाहर रहनेवाले किसानों की लड़ाई हो जाती है। इसका कारण यह है कि ये लोग रात को उनके यहाँ से चीज़ें चुरा लाते हैं। इन लोगों में कोई नैतिक नियम न होने से चोरी करने में बड़ी सुविधा होती है। इन्हें ज्यों ही कोई चीज़ पसंद आती है, त्यों ही ये उसे ले भागते हैं। इसलिये किसान कहते हैं कि यह जाति पृथ्वी से मिट जाय तो अच्छा हो। बौने यदि अस्त्र-शस्त्र से सज्जित न हों, तो कई मिलकर भी एक किसान का मुक़ाबला नहीं कर सकते। किंतु यदि हाथ में अस्त्र हो, तो एक बौना भी एक बड़े अस्त्रधारी योद्धा का सामना कर सकता है। हमारे दल का एक साहसी बंदूक़धारी सिपाही एक दिन एक साधारण बौने का सामना न कर सका था। बौने सदा सतर्क रहते हैं। किंतु हमारे सिपाही किसी को सामने न देखकर तुरंत असावधान हो जाते हैं। इसीलिये वे मारे जाते हैं।

बौनों की देह से एक प्रकार की दुर्गंधि आती है। इसलिये यदि वे कहीं आसपास होते हैं, तो तुरंत जान लिए जाते हैं।

कितनी शताब्दियों से ये लोग जंगल में रहते हैं, इसका

निर्णय करना कठिन है। किसी-किसी इतिहास-वेत्ता का अनुमान है कि ये लोग कोई साढ़े तीन हज़ार वर्ष से यहाँ रहते हैं। इतने दिन असभ्य अवस्था में रहने पर भी ये पृथ्वी से लुप्त नहीं हुए। अतएव यह आशा की जाती है कि ये भविष्यत् में अवश्य ही सभ्य हो जायँगे।

[मार्च १९११

जूलूलैंड (अफ़रीका) की असभ्य जूली-जाति

जूलूलैंड दक्षिण—अफ़रीका का एक प्रदेश है। उसका विस्तार कोई ८,९०० वर्ग-मील है। उसके उत्तर में स्वाज़ीलैंड और टोंगा-लैंड है और पूर्व में भारत-महासागर। दक्षिण में टुगेला नदी उसे नेटाल से अलग करती है। उसके पश्चिम में ड्राकेंसबर्गेन नाम की पर्वत-माला है। यह प्रदेश अँगरेज़ी गवर्नमेंट द्वारा संरक्षित नेटाल-राज्य के अधीन है। यहाँ की जन-संख्या डेढ़ लाख है। उसमें कोई साढ़े छः सौ अँगरेज़ हैं।

इस देश में जूलू-जाति का निवास है। इससे इसका नाम जूलू-लैंड है। यह जाति बांटू नामक हबशियों की एक शाखा है। नेटाल, केप-कालनी, दक्षिण-पूर्व-अफ़रीका और सोफाला आदि प्रदेशों के समुद्र के किनारेवाले हिस्सों में भी इस जाति के लोग रहते हैं। कोई-कोई इन्हें जूलू काफ़िर भी कहते हैं, पर यह इनका उपयुक्त नाम नहीं। काफ़िर अरबी-भाषा का शब्द है। ज़ंजिबार और सोफाला

के अरब लोग इन्हें मूर्ति-पूजन करते देख, घृणा से इन्हें काफ़िर कहा करते थे। तभी से इनका यह नाम पड़ गया।

ज़ूलो लोगों का आदिम स्थान कहाँ था और वे लोग कब इस प्रदेश में आए, इसका ठीक-ठीक पता अभी तक नहीं मिला। कुछ लोगों का अनुमान है कि ये लोग अन्यान्य हबशी जातियों के पीछे यहाँ आए। इनके आने का समय अँगरेज़ों के आने के हज़ार-डेढ़ हज़ार वर्ष पहले माना जाता है। परंतु इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं।

ज़ूलो लोगों का रंग-रूप मध्य ज़ाँबेज़ी और कांगोलैंड के निवासियों से मिलता है; पर इनकी भाषा उन लोगों की भाषा से भिन्न है। इनके शब्दों के उच्चारण से हाटेंटाट लोगों के शब्दों की तरह खटखटाहट की ध्वनि निकलती है। इन लोगों के शब्दों की व्युत्पत्ति सेकुआना और डमारा भाषा के शब्दों से अधिक मिलती है। कृषि-विद्या, सामाजिक नियम, युद्ध-विद्या और अस्त्र-शस्त्र में पूर्व-अफ़्रीका और विक्टोरिया यान्ज़ा के निवासियों से इनका सादृश्य पाया जाता है।

ज़ूलू लोग बांटू-श्रेणी की अन्यान्य जातियों के लोगों से सुडौल और सुंदर होते हैं। इन लोगों का रंग भी उन लोगों से कुछ साफ़ होता है। पहले ये लोग बैल, भेड़ आदि के चमड़े से अपने पहनने के वस्त्र तैयार करते थे, पर अब ये कंबल और सूती कपड़ों का भी व्यवहार करने लगे हैं। परंतु इन लोगों को कपड़े-लत्ते की परवा बहुत कम रहती है; केवल जाड़े और बरसात ही में ये लोग लंबा अँगरखा पहनते हैं। अन्य ऋतुओं में मर्द-औरत दोनों कमर से ऊपर का समूचा अंग खुला ही रखते हैं। स्त्रियाँ कभी-कभी अपने वक्षःस्थल ढँके रहती हैं; पर पुरुषों का वक्षःस्थल सदैव खुला ही रहता है। इनके अँगरखों के रंग और काट-छाँट में परस्पर बहुत भेद

पाया जाता है। कोई-कोई काँच के मनकों, बटनों और कौड़ियों से अपने अँगरखों को सजाते हैं।

इन लोगों में बाल सँवारने की चाल बड़ी विलक्षण है। मर्द समूचा सिर मुड़ाकर बीच में एक चोटी रखते हैं। इसी चोटी में कोई पाँच इंच व्यास का एक चक्र लगाकर ये जूड़ा-सा बना लेते हैं। जूड़े में ये लोग कभी-कभी चिड़ियों के पर भी खोंसते हैं। तंबाकू का डिब्बा, सुई आदि भी ये जूड़े ही में रखते हैं। औरतें अपने बालों में चरबी तथा और कई चीज़ें लगाकर उन्हें कड़ा बना लेती हैं। फिर उनको एक साथ लपेटकर ऊपर को उठी हुई एक लंबी चोटी तैयार करती हैं। कोई-कोई अपने बालों की पतली-पतली चोटियाँ बनाकर उन्हें जुल्फ़ की तरह छाँट देती हैं। दाँतों में मिस्सी मलने और कीलें लगवाने का भी इन्हें शौक़ है। अन्यान्य असभ्य जातियों की तरह जूलू लोग भी अपना बदन रँगते हैं। इन लोगों में इस रिवाज ने कुछ कुछ धार्मिक भाव धारण कर लिया है। जैसे हम लोगों के यहाँ कर्णवेध या यज्ञोपवीत होता है, वैसे ही इनके यहाँ भी एक रस्म होती है। उसके पहले लड़कों का बदन खून और पानी में घुली हुई सफ़ेद मिट्टी से रँगा जाता है। एक बार सिर से पैर तक मिट्टी से पोतकर लड़के धूप में नंगे नाचने के लिये छोड़ दिए जाते हैं। बदन सूख जाने पर फिर पोता जाता है। इस प्रकार जब तक बदन का रंग खूब उजला नहीं हो जाता, तब तक बार-बार उन पर रंग चढ़ाया जाता है। जवानी में औरतें भी कभी-कभी अपना बदन रँगती हैं। नाक, कान आदि छिदाने की चाल भी इन लोगों में है। बहुत सी औरतें तो अपना ऊपर का होंठ भी छिदा लेती हैं और उसमें बहुत मोटी नथ पहनती हैं। किंतु अब यह रिवाज धीरे-धीरे कम हो रही है।

ज़ूलू लोग छोटी-छोटी फूस की झोपड़ियों में रहते हैं। वृक्षों की मज़बूत और झुकाई जाने लायक़ शाखाओं को ये ज़मीन में गाड़ देते हैं और उनके दूसरे सिरों को चारों तरफ़ से झुका कर मिला देते हैं। ऊपर से फूस डाल देते हैं। इनकी झोपड़ियाँ बहुत छोटी होती हैं। इनके भीतर कोई आदमी सीधा नहीं खड़ा हो सकता। इन झोपड़ियों का दरवाज़ा इतना छोटा होता है कि ये लोग चौपायों की तरह हाथ-पैर के बल उसके अंदर जाते हैं। ये लोग ज़मीन ही पर चटाई और कंबल बिछाकर सोते हैं और कंबल ही ओढ़ते भी हैं। तकिए का व्यवहार भी ये लोग करते हैं। इनके तकिए मुलायम चमड़े के होते हैं। ये लोग खाने की चीज़ें और कपड़े आदि बोरों में भरकर रखते हैं। बोरों के मुँह पर पीतल की छल्लियाँ लगी रहती हैं। उन्हीं छल्लियों में ताले डाले जाते हैं। इन सब चीज़ों के सिवा प्रत्येक झोपड़ी में रसोई बनाने के बरतन और तीर, भाले आदि अस्त्र भी रहते हैं।

इनके भोजन की मुख्य सामग्री जंगली फल, दूध, मांस, शहद आदि हैं। इसके सिवा ये मछली, रोटी आदि भी खाते हैं। ये लोग शहद को बहुत पसंद करते हैं।

ज़ूलू लोगों में लड़के-लड़कियों की शादी उनके माता-पिता के अधीन है। साधारण तौर पर लड़केवाले की ओर से एक बैल लड़की के पिता के पास भेजा जाता है। यदि उसने उस उपहार को स्वीकार कर लिया, तो समझा जाता है कि शादी की बात पक्की हो गई। इसके बाद लड़केवाला फिर एक बैल भेजता है। तब शादी का दिन नियत होता है। शादी के समय लड़की को तीन लौंडियाँ, दस बैल और बहुत से कपड़े लड़केवाले की ओर से दिए जाते हैं। इन लोगों का सामाजिक नियम बहुविवाह का बाधक नहीं है; पर यह बात आदमी की आर्थिक अवस्था पर

अवलंबित है। तलाक़ की प्रथा भी इन लोगों में है। किंतु इसके लिये पुरुष को स्त्री का और स्त्री को पुरुष का दोष दिखाना पड़ता है।

जूलू लोग अपने पूर्व पुरुषों की पूजा करते हैं। उनका विश्वास है कि मरे हुए आदमियों की आत्माएँ अन्यत्र ठीक उसी तरह निवास करती हैं, जैसे वे यहाँ रहते थे और आराधना द्वारा वे बुलाई जा सकती हैं। मंत्र-तंत्र पर भी उन लोगों को पूरा विश्वास है। कोई शारीरिक कष्ट होने पर वे प्रायः उसे प्रेत-बाधा समझते हैं। उनके चिकित्सक ही प्रायः प्रेत-निवारण किया करते हैं। ये चिकित्सक बड़ी-बड़ी करामातें दिखाने का दावा करते हैं। ये कहते हैं कि चिकित्सक जब चाहें पानी बरसा सकते हैं और आँधी, तूफ़ान आदि को भी अपने मंत्र के बल से रोक सकते हैं। डाइन और ओझा लोगों से ये लोग बहुत डरते हैं।

जूलू लोगों में सुन्नत का रिवाज है। किंतु मुसलमानी धर्म की और बातें इनमें नहीं। इस समय ईसाई धर्म का प्रभाव इन लोगों पर ख़ूब पड़ रहा है। कुछ लोग ईसाई हो भी गए हैं। जिन लोगों ने यह धर्म स्वीकार कर लिया है, उनके सामाजिक नियम भी बहुत बदल गए हैं।

जूलू लोग मुर्दे को नहीं जलाते। ये उन्हें गाड़ देते हैं। प्रायः ओझा लोग अपनी तांत्रिक क्रिया सिद्ध करने के लिये मुर्दों को उखाड़ लिया करते हैं। इससे अमीर जूलू लोग अपने संबंधियों की क़ब्रों पर बरसों दिन-रात पहरा बिठाए रहते हैं।

शिकार, खेती और पशु-पालन ही जूलू लोगों की प्रधान आजीविका है। ये लोग लोहा, पीतल आदि गलाकर मामूली हथियार बनाना जानते हैं।

जूलू लोग बड़े बहादुर और युद्ध-विद्या में निपुण होते हैं। ये

लोग पैदल ही युद्ध करते हैं। तीर, कमान, भाला, ढाल, तलवार, गदा आदि इनके मुख्य अस्त्र-शस्त्र हैं। ये कभी-कभी दूसरे प्रदेशों पर भी आक्रमण करते हैं। कोई अस्सी वर्ष पहले इन लोगों ने रोडेशिया, ज़ाँबेज़ी, न्यासालैंड तथा जर्मनीवालों के पूर्व-अफ़रीका आदि प्रदेशों पर अधिकार करके वहाँ अपनी भाषा का प्रचार किया था। कुछ ज़ूलू सरदारों ने एक दफ़े आधे अफ़रीका को तबाह कर दिया था।

इनके सरदार डेनी ज़ूलू का नाम पाठकों ने अख़बारों में पढ़ा होगा। अभी कुछ ही समय हुआ उसने बग़ावत करके अँगरेज़ी गवर्नमेंट को तंग किया था। पर अंत में वह पकड़ा गया और उसे सज़ा हुई।

ज़ूलू लोगों ने अपनी सामाजिक और राजनैतिक अवस्था में बहुत उन्नति की है। प्रायः सब असभ्य जातियों में "वीरभोग्या वसुन्धरा" की प्रथा ही प्रचलित है। परंतु ज़ूलू लोगों के राजा वंश-परंपरा के अनुसार ही होते हैं। इनके यहाँ फ़ौजदारी और दीवानी दोनों तरह के क़ानून हैं। पर वे लिपिबद्ध नहीं। वहाँ क़ानून जाननेवालों की एक श्रेणी है। उस श्रेणी के लोग परंपरा से बराबर क़ानूनी विषयों ही की चर्चा करते आते हैं। वे इस काम के सिवा और कुछ नहीं करते। वहाँ खुली अदालतों में न्याय होता है और सबको बोलने की स्वतंत्रता दी गई है।

[मई १९११

पूर्वी अफ़्रीका की कुछ जंगली जातियाँ

अफ़्रीका के पूर्व ज़ंज़िबार या जंगबार नाम का एक टापू है। उससे थोड़ी दूर पर एक और छोटा-सा टापू है। उसका नाम है ममबासा। जैसे बंबई टापू था और अब स्थल में मिला लिया गया है, वैसे ही ममबासा भी पूर्वी अफ़्रीका के भूमि-भाग में मिल गया है। उसका टापूपन, अर्थात् द्वीपत्व, जाता रहा है। ममबासा और उसके आसपास के प्रदेशों में पहले पोर्चुगीज़ों का आधिपत्य था; परंतु, इस समय, वहाँ हमारे प्रभु अँगरेज़ों की प्रभुता है। उस भाग का नाम है—"ब्रिटिश ईस्ट अफ़्रीका।" जहाँ ब्रिटिश पताका फहराई, वहाँ रेल पहुँची समझना चाहिए। अफ़्रीका का पूर्वी भाग हाथ में आते ही गवर्नमेंट ने रेल चलाने का तत्काल ही प्रबंध किया। हिंदोस्तान से हज़ारों कुली और बाबू भेजे गए। अनंत धन ख़र्च करके, और अनंत कठिनाइयों को झेल-कर, ममबासा से उगंडा तक रेल तैयार हुई और चलने भी लगी। उसका नाम हुआ—"उगंडा गवर्नमेंट रेलवे।" उसकी लंबाई कुल ६८६ मील है। वह छोटी पटरी की लाइन है और गगनचुंबी पर्वतों को काटकर बनाई गई है। छोटी-बड़ी अनेक नदियाँ और नाले भी लाँघने पड़े हैं। इस रेलवे के कर्मचारी प्रायः सभी इस देश के हैं। इनमें से एक सज्जन अच्छे पद पर हैं। समय-समय पर वे वहाँ की मनोरंजक बातें हमको लिखा करते हैं। उनकी कुछ चिट्ठियों का ख़ुलासा हम यहाँ पर देते हैं—

ब्रिटिश गवर्नमेंट की इस पूर्वी अफ़्रीका में सबसे बड़ा शहर ममबासा है। यहाँ बंदरगाह भी है। पहले तो यह शहर कुछ न था; परंतु जब से रेल हुई, तब से इसकी बेहद तरक़्क़ी हुई है। यहाँ अब सैकड़ों मोमिन, भाठिए, कच्छी, पारसी और माड़वारी देख

पड़ते हैं। अरबवाले तो यहाँ पहले ही अधिकता से थे; अब इनकी संख्या और भी बढ़ गई है। ये लोग बड़ा व्यापार करते हैं। व्यापार की यहाँ रोज़-बरोज़ तरक़्क़ी होती जाती है। कितने ही बड़े-बड़े अँगरेज़ व्यापारी भी यहाँ हैं। यहाँ फलों की अत्यंत अधिकता है। आम, जामुन, केला, नारियल, नींबू, नारंगी, अनन्नास और कटहल ख़ूब होते हैं। आम और जामुन, यहाँ बारह महीने बना रहता है। इस देश में एक प्रकार का आम बहुत ही मीठा होता है। तौल में वह तीन पाव तक बैठता है और आकार उसका ख़रबूज़े का जैसा होता है। ममबासा के दस मील इधर-उधर आम और जामुन आदि के जंगल-के-जंगल खड़े हैं। चाहे उनसे जितने फल तोड़ लिए जाएँ, कोई रोकनेवाला नहीं।

फल देनेवाले इन प्राकृतिक बाग़ीचों के आगे बड़ा ही विकट जंगल है। यह जंगल पर्वतमय है। अनेक बड़ी-बड़ी नदियाँ भी इससे होकर बहती हैं। यह जंगल इतना घना है कि मनुष्य के लिये प्रायः अगम्य है। यह भयानक वन विकराल हिंस्र जीवों का घर है। इसमें शेर, बबर, चीता, गैंडा, हाथी, रीछ, ज़बरा, शुतुर्मुर्ग़, ज़िरफ़, अज़दहा और सैकड़ों प्रकार के विषैले सर्प विचरा करते हैं। इनके सिवा सैकड़ों तरह की विलक्षण-विलक्षण चिड़ियाँ और दूसरे जीव भी यहाँ पाए जाते हैं। कितने ही वृक्ष, फूल और बेलें यहाँ ऐसी हैं, जो शायद ही और कहीं होती होंगी। यहाँ का सिंह बहुत बलवान्, भयंकर और प्रकांडकाय होता है। उसका रंग ऊँट का-सा होता है और उसकी गरदन के बाल १२ अंगुल से भी अधिक लंबे होकर नीचे लटकते हैं। अफ़रीका के हाथी भी बहुत बड़े होते हैं। उनकी वहाँ बड़ी अधिकता है। अफ़रीका ही से सबसे अधिक हाथी-दाँत भेजा जाता है। एक-एक दाँत छः-छः मन का होता है। जिस समय उगंडा-रेलवे की नाप हो रही

थी, उस समय एक इंजीनियर साहब को एक बहुत बड़ा दाँत मिला था। उसको उठाने में १८ आदमी लगे थे !

पूर्वी अफ़रीका का कुछ भाग जर्मनीवालों ने भी अपने अधिकार में कर लिया है। उनकी और अँगरेज़ों की हद मिली हुई है। जो देश जर्मनीवालों के अधिकार में है, उसमें किलेमान जारू नामक एक बहुत ऊँचा पर्वत है। उसकी सबसे ऊँची चोटियाँ बर्फ़ से ढकी रहती हैं। वहाँ केले के सिवा और कोई चीज़ नहीं पैदा होती। उसी को खाकर लोग जीते हैं। जर्मनी के पादरियों ने वहाँ "मिशन" स्थापित किए हैं। उनके द्वारा वहाँ के जंगली किरिस्तानों को तालीम दी जाती है और किरिस्तानी धर्म सिखलाया जाता है। जर्मनों ने भी रेल बनाई है। उसका नाम "टाँगा-रेलवे" है। अँगरेज़ों के पूर्वी अफ़रीका में भी सैकड़ों "मिशन" हैं। यहाँ भी उस देश के जंगली शिक्षा पाते हैं और हज़रत ईसा के अनुयायी बनकर क्रिश्चियनों की संख्या बढ़ाते हैं।

ममबासा समुद्र के किनारे और विषुववृत्त से थोड़ी ही दूर पर है। इसलिये वहाँ की आबोहवा न बहुत सर्द है, न बहुत गरम। उससे कोई ५० मील पश्चिम की ओर सर्दी अधिक पड़ती है। ममबासा से कोई १०० मील आगे तो इतनी अधिक सर्दी पड़ती है कि मोटे-मोटे चार-छः कंबलों से भी जाड़ा नहीं जाता। परंतु उगंडा के पास, अर्थात् विक्टोरिया न्यान्ज़ा झील के निकटवर्ती प्रदेश में, बिलकुल सर्दी नहीं पड़ती। वहाँ तो सख़्त गर्मी पड़ती है।

अँगरेज़ों के इस पूर्वी अफ़रीका में जंगली हबशियों की तीन जातियाँ रहती हैं—सुहेली, बकांबे और मसाई। उगंडा-रेलवे को प्रायः पंजाबी कुलियों ने बनाया है; क्योंकि अफ़रीका के ये जंगली पहले मज़दूरी भी नहीं करते थे। असभ्यता के कारण वे सभ्यों

से दूर भागते थे। परंतु अब वे काम करने लगे हैं। पाँच रुपए तनख़्वाह अथवा पेट भर खाने को चावल देने से वे, सबेरे से शाम तक, ख़ूब काम करते हैं। उनमें से सुहेली कुछ अधिक सभ्य हैं। वे अरब और अफ़रीका के पुरातन हबशियों की संतति हैं। इस समय मिशनरी स्कूलों में वे शिक्षा पा रहे हैं। आशा है कि वर्ष-दो वर्ष में उनमें से कितने ही सुहेली रेल में लिखने-पढ़ने का काम करने लायक़ हो जायँगे।

सुहेलियों में जो क्रिश्चियन नहीं हुए, वे मुसलमान हैं; परंतु धकांब और मसाई जाति के लोग कोई धर्म नहीं रखते। वे सर्वथा धर्महीन और जंगली हैं। उनका रंग तवे के समान काला होता है। उनके सिर पर भेड़ की ऊन के समान छोटे-छोटे, परंतु कोमल, केश होते हैं। दाढ़ी-मूछ उनके बिलकुल नहीं होती। स्त्री-पुरुष सभी नंगे रहते हैं और धनुर्बाण हाथ में लिए जंगल में, शिकार की खोज में, घूमा करते हैं। मांस और शहद ही विशेष करके इनका खाद्य है। ये लोग हाथी-दाँत, शहद, गैंड़े के सींग, शुतुर्मुर्ग़ के पर और नाख़ून अरबों और मोमिन लोगों को देकर कभी-कभी उनसे ताँबे, पीतल और लोहे के तार लेते हैं। फिर इन तारों को मोड़-कर हाथ, पैर और गले में वे आभूषण की तरह पहनते हैं। जो कुछ सभ्य हैं, वे मोटा कपड़ा भी बदले में लेते हैं और उसे कमर से लपेटते हैं। ये लोग पूरे निशाचर हैं। इनमें निर्दयता का अखंड वास है। ये अपने तीर-कमान ही को अपना सर्वस्व समझते हैं। और जीव-हत्या ही को अपना व्यवसाय जानते हैं। जो लोग शहरों और नगरों के पास रहते हैं और जिनका सभ्य आदमियों से संपर्क रहता है, उनमें कुछ-कुछ समझ आने लगी है। इससे कोई-कोई ज़मीन खोदकर मकई, ज्वार और बाजरा आदि बोने लगे हैं; गाय और बकरियाँ रखने लगे हैं; दूध भी बेचने लगे हैं।

मसाई जाति के लोग अधिक बलवान्, निडर और पराक्रमी होते हैं। उनका भी रंग कोयले की तरह काला होता है। हाथ में भाला लिए हुए वे जंगल में विचरा करते हैं। उनमें से कोई-कोई गाय, भेड़ या बकरी की खाल से शरीर का निचला भाग ढक लेते हैं। मसाई लोग पीली या लाल मिट्टी को तेल में मिलाकर अपने सारे शरीर पर पोत लेते हैं। इस प्रकार के लाल-पीले आदमी, उन लोगों में, बहुत ही खूबसूरत समझे जाते हैं। पुरुष ज़रा आराम-तलब होते हैं; उनकी स्त्रियाँ ही अधिक काम करती हैं। इन लोगों के पास सिवा तुंबे के और कोई बरतन नहीं रहता। वही उनका क़ीमती पात्र है। मसावे प्रायः स्थिर नहीं रहते; घूमना ही उनका स्वभाव है। आज यहाँ, कल वहाँ। कभी-कभी दस-बीस कुटुंब इकट्ठे भी रह जाते हैं। ऐसे लोग फूस के छोटे-छोटे झोपड़े बना लेते हैं। यों तो इनका पेट शिकार से भरता है; परंतु जब इनको शिकार नहीं मिलता और भूख से ये बहुत पीड़ित होते हैं, तब ये ताज़े रुधिर और दूध में बकरियों की मेंगनी डालकर उसे खाते हैं। वही उनकी खीर है। बकरी के बदन में लोहे की एक पैनी सलाई वे घुसेड़ देते हैं। उससे जो रुधिर निकलता है, उसे वे तुंबे में भर लेते हैं। उसमें फिर वे उसका दूना दूध मिलाते हैं। जब वह सब एक हो जाता है, तब उसमें बकरियों की ताज़ी मेंगनी डालकर उसे वे खूब मिलाते हैं और मिलाकर खा जाते हैं। इनको कोई ऐसी बूटी मालूम है कि उसे लगाने से, इस प्रकार सलाई से किया हुआ बकरी के बदन का घाव शीघ्र ही अच्छा हो जाता है।

बकांबे जाति से दूसरे जंगली आदमी बहुत डरते हैं। उनको विश्वास है कि बकांबे विकट जादू जानते हैं और अद्भुत-अद्भुत गुण रखनेवाली जड़ी-बूटियों के प्रयोग से वे जो चाहें कर सकते हैं। यह जाति भी बड़ी निर्दयी है। बड़ी-बड़ी चिड़ियों को ये लोग

जाल में फाँसते हैं। फिर, जीते ही वे उनके बाल और पर उखाड़ते हैं। अनंतर उन्हें वे आग में समूची ही जीती खड़ी कर देते हैं। इस तरह उन्हें थोड़ा बहुत झुलसा कर वे खा जाते हैं। इस जाति की स्त्रियाँ प्रायः दिगंबर रहती हैं। गले और कमर में वे पत्थर के दानों की माला, कई लड़ी करके, पहनती हैं। इसी को वे बहुमूल्य गहना समझती हैं।

इन असभ्य जंगली लोगों में एक विलक्षण गुण है। वह गुण सभ्यों के सीखने लायक़ है। ये लोग अपनी-अपनी जातिवालों से अत्यंत स्नेह रखते हैं। इनमें अपूर्व एका होता है। यदि दो-चार के बीच में एक ही चिड़िया या एक ही रोटी हो, तो उसे सब बराबर-बराबर बाँट कर खाते हैं। एक पर विपत्ति आने से सब जी-जान से उसकी सहायता करते हैं। परंतु ये बातें अपनी-ही-अपनी जाति में पाई जाती हैं। परस्पर एक दूसरी जाति से ये लोग घोर शत्रुता रखते हैं और उनमें बहुधा मार-काट हुआ करती है। बकांबे सुहेलियों के जानी दुश्मन हैं और मसाई बकांबे जातिवालों के।

[जूलाई १९०४

प्रशांत-महासागर के टापुओं की कुछ असभ्य जातियाँ

प्रशांत-महासागर में छोटे-बड़े सैकड़ों टापू हैं। वे सब ओशनियाँ के नाम से प्रसिद्ध हैं। उनमें से टोंगा, ताहिती, समोआ और हवाई आदि टापुओं के समूह का नाम पालीनेशिया है; और फ़ीजी, न्यू कैलेडोनिया, सालोमन आदि के समूह का नाम

मेलानेशिया। इन टापुओं के पहले समूह में जो असभ्य आदमी रहते हैं, व पालीनेशियन कहलाते हैं और जो दूसरे में रहते हैं, वे मेलानेशियन। यही लोग यहाँ के मूल निवासी हैं। पहले ये बेहद असभ्य थे। पर जब से योरप और अमेरिका के सभ्य सज्जन इन टापुओं में पधारे, तब से इनकी असभ्यता कम होने लगी। अब तो वह और भी दिन-दिन कम होती जाती है। परंतु इसके साथ ही उनका विनाश-साधन भी होता जाता है। पश्चिमी सभ्यता की बदौलत इन लोगों में नए-नए व्यसनों का प्रादुर्भाव हो गया है, जो इनकी संख्या बराबर कम करता जा रहा है। जो जाति इस मनुष्य-गणना में, कल्पना कीजिए, एक हज़ार है, वह, दस वर्ष बाद दूसरी मनुष्य-गणना में पाँच ही सौ रह जायगी। यह दशा है! इनकी संख्या की कमी के और भी कई कारण हैं।

पालीनेशिया के टापू पहले बिलकुल उजाड़ थे। वहाँ के मूल-निवासी और ही कहीं रहते थे। वे किसी उत्तर-पश्चिम के देश या प्रांत से वहाँ गए जान पड़ते हैं। यह बात उनके रूप-रंग और क़द से सूचित होती है। यहाँ वाले क़द में, कोई-कोई छः फ़ीट तक ऊँचे होते हैं। बाल काले और सीधे होते हैं। चमड़े का रंग कुछ-कुछ भूरापन लिए होता है। योरपवालों के संसर्ग से ये लोग अब काहिल हो गए हैं और दुराचरण की लत भी इनमें पड़ गई है। अन्यथा ये बड़े परिश्रमी और, कुछ को छोड़कर, सदाचरणशील थे।

योरपवालों के पालीनेशिया में पहुँचने के पहले वहाँ के निवासी खेती करना अच्छी तरह जानते थे। ये लोग रोटी, तरकारी ही अधिक खाते थे, मांस-मछली कम। नारियल यहाँ अधिकता से होता था। ये लोग नाव बनाना भी जानते थे। तैरने में तो

ये बड़े ही निपुण थे। शहतूत की जाति का एक पेड़ वहाँ होता है। उसकी रस्सी ये लोग ऐसी अच्छी और मज़बूत बनाते थे, और अब भी ऐसी बनाते हैं कि उसे देखकर आश्चर्य होता है। एक पेड़ की छाल कूटकर उसके बारीक तंतुओं से ये लोग एक प्रकार का मोटा कपड़ा भी बनाते थे। धनुर्बाण और भाले इनके हथियार थे। फावड़ा, कुदाली आदि ये लोग पत्थर के बनाते थे। इनके कुछ औज़ार सीपी के भी होते थे।

पालीनेशिया के निवासियों में अधिकांश अब क्रिश्चियन हो गए हैं। परंतु पहले वे विशेष करके सूर्य और चंद्रमा के उपासक थे। उन्हीं की वे पूजा करते थे; उन्हीं की मूर्त्तियाँ स्थापित करते थे। हवाई नाम के टापुओं के निवासी और भी कई देवताओं को पूजते थे। वहाँ कई ज्वालामुखी पर्वत हैं। अतएव उनके कितने ही देवताओं की सृष्टि पर्वतों के कारण हुई थी। इन देवताओं के सामने मनुष्यों तक की बलि दी जाती थी। खाने की चीज़ें और शराब भी इन पर चढ़ाई जाती थी। नर-बलि तो नहीं, पर और सब प्राचीन प्रकार की पूजा अब तक यहाँ होती है। इन लोगों की कितनी ही प्राचीन देव-मूर्त्तियाँ पश्चिमी सभ्यता के प्रसाद से नष्ट-भ्रष्ट हो गई हैं। कुछ योरप के बड़े-बड़े अजायबघरों में पहुँच गई हैं। बची-खुची जो रह गई हैं, वे यत्र-तत्र पाई जाती हैं।

असभ्य जातियों में जैसे नाचों का प्रचार है, वैसे ही नाच पहले यहाँ भी होते थे। खेल-कूद के तरीक़े भी इनके बड़े विचित्र थे। उन्हें देखकर सभ्यताभिमानियों के मन में भय और घृणा के भाव एक ही साथ उदित होते थे। जितने धार्मिक उत्सव होते थे, सबमें भयानक नाच और उछल-कूद के तमाशे होते थे। यहाँ-वाले किसी ज़माने में कमज़ोर बच्चों और बुड्ढों को, गले में फाँसी

लगाकर, मार डालते थे। अपने समाज में निर्बल मनुष्यों को जीता रखना ये लोग अपनी तौहीन समझते थे। जवान और सबल आदमियों ही को जीते रखने के ये पक्षपाती थे। उन्हीं से ये अपने समाज की शोभा समझते थे।

परंतु योरपवालों के संसर्ग से इन लोगों ने अपनी पुरानी चाल-ढाल बहुत कुछ बदल डाली है। धर्मांतर भी इन्होंने कर डाला है और कपड़े-लत्ते में भी रूपांतर कर दिया है। अब इनमें से कितने ही आदमी कोट और पतलून पहनने लगे हैं। पहले तो ये प्रायः दिगंबर ही रहते थे। अब भी इन लोगों में अधिकांश दिगंबर नहीं तो अर्द्ध-दिगंबर ही बने विचरा करते हैं। इनकी स्त्रियाँ भी कमर के ऊपर का सर्वांग खुला रखती हैं; जो कुछ सभ्य हो गई हैं वही उस अंग को ढके रहती हैं। पुराने नाच-कूद अब इनके बंद हो चले हैं। किसी-किसी बहुत बड़े महत्त्व के मौक़े पर अब ये लोग पुराने ढंग का नाच नाचते हैं। समोआ टापू के निवासी यद्यपि मामूली तौर पर कपड़े-लत्ते पहनने की बिलकुल ही परवा न करते थे, सिर्फ़ पत्तियों से अपने अंग-विशेष को ढके रहते थे, तथापि बड़े-बड़े उत्सवों और धार्मिक कामों के समय एक लंबा जामा पहनते थे। यहाँ के धार्मिक नर्तक एक ऊँची टोपी, नाचने के समय, पहनते थे। उसे देखकर सभ्य आदमियों को बड़ा कौतुक होता था। हवाई द्वीप के मूल निवासी पक्षियों के पर लगा कर एक अजीब तरह का लंबा कोट बनाते थे। उसके तैयार करने में बरसों लग जाते थे। यह कोट बड़े मोल का होता था। ख़ास-ख़ास मौक़ों पर यह कोट पहना जाता था। पर ये पुराने ढंग के वस्त्राच्छादन अब योरप और अमेरिकावालों के कोट और हैट को अपना स्थान देते चले जा रहे हैं। क्रम-क्रम से उनका रिवाज कम हो रहा है।

पालीनेशिया और मेलीनेशिया के मूल निवासियों के विषय में सैकड़ों पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं। इन टापुओं में योरपवालों का प्रवेश हुए कई सौ वर्ष हुए। तब से आज तक इन लोगों के रीति-रिवाज आदि पर बराबर पुस्तकें लिखी जा रही हैं। उनमें से जो बहुत पुरानी पुस्तकें हैं, उनमें लिखी हुई कुछ बातें बड़ ही अचंभे की हैं। उन बातों का अब बहुत ही कम रिवाज है। इससे सूचित होता है कि इन टापुओं के निवासी अपनी पुरानी चाल को बहुत शीघ्र छोड़ सकते हैं। एक पुस्तक में लिखा है कि टोंगा-द्वीप के निवासी पहले जाँघों तक गुदना गुदाते थे। उसमें वे पीले रंग की कोई चीज़ लगाते थे। इससे उनका यह अंग उम्र भर पीला बना रहता था और देखने में बड़ा ही विलक्षण मालूम होता था। ये लोग स्त्री और पुरुष दोनों कमर पर मोटे कपड़े या चटाई का एक छोटा-सा टुकड़ा-मात्र लपेटते थे। बाक़ी सारा अंग नंगा रहता था। संकोच और लज्जा का कहीं इनमें नाम न था। तरुण लड़कियाँ पिता और गुरुजनों के सामने इस वेश में आते ज़रा भी न सकुचाती थीं। स्त्रियाँ और पुरुष दोनों एक ही तरह के गहने पहनते थे। ये लोग माला या हार पहनने के बड़े शौक़ीन थे। इनके हार विशेष करके चिड़ियों की टाँगों की हड्डियाँ और शार्क नामक मछली के दाँतों के होते थे। सीपियाँ और जंगली फलों की गुठलियों के भी हार ये लोग बनाकर पहनते थे। चिड़ियों के बाज़ू और चोंचें भी कभी-कभी ये अपने हारों में पिरो देते थे। कछुए की हड्डियों की अँगूठियाँ और बाज़ूबंद भी इन्हें बड़े प्रिय थे। प्रत्येक कान में ये लोग दो-दो छेद करके उनमें हाथीदाँत या मामूली हड्डियों की तीन-तीन इंच व्यासवाली बालियाँ पहनना बहुत पसंद करते थे। यद्यपि ये बिलकुल ही असभ्य थे, तथापि अपने बदन को ये हमेशा साफ़ रखते थे।

इसलिये ये दिन में दो-दो, तीन-तीन दफ़े तालाबों में नहाते थे। यदि समुद्र में नहाने का मौक़ा आता, तो तालाब का पानी मिलते ही उसे अपने ऊपर डालकर बदन दुबारा धो डालते थे। समुद्र के पानी से चमड़ा फट जाता है। इस तकलीफ़ से बचने के लिये ये लोग ऐसा करते थे।

पालीनीशियन और मेलानीशियन लोग बाल सँवारने के पीछे बे तरह पागल रहते हैं। मर्द-औरत सभी अपने बाल रँगने, सँवारने और उन्हें सीपियों और पक्षियों के पंखों तथा फूल-पत्तियों से आभूषित करने में घंटों ख़र्च करते हैं। रात को जब ये लोग सोते हैं, तब सिर के नीचे काठ की एक विचित्र तकिया रखते हैं। वह इस तरह की होती है कि बालों का जूड़ा ज्यों का त्यों बना रहता है—बाल बिखरने नहीं पाते। इस तकिए के कारण इन लोगों को सोते समय बहुत तकलीफ़ मिलती है; परंतु उसे ये ख़ुशी से सह लेते हैं। तकलीफ़ चाहे जितनी हो, बाल न बिखरने पावें!

इन द्वीप-समूहों के निवासी एक प्रकार के सोमयाजी किंवा सोमपायी हैं। इनके सोम-रस का नाम है कावा। किसी-किसी टापूवाले इसे आवा भी कहते हैं। सामोआ-टापू के निवासी बड़े-बड़े उत्सवों और त्योहारों पर कावा ज़रूर पीते हैं। यह एक पौधे की जड़ से बनाया जाता है। निर्दिष्ट समय पर सैकड़ों आदमी इकट्ठे होते हैं। अपने-अपने पद के अनुसार वे क़तारों में आगे-पीछे बिठाए जाते हैं। फिर सबको कावा की जड़ें दी जाती हैं। उन्हें दाँतों से चाबकर ये लोग ख़ूब बारीक करते हैं। तब वह सारी-की-सारी लुगदी पत्तों पर रक्खी जाती है। इसके बाद वह एक बड़े बरतन में रखकर उबाली और तदनंतर छानी जाती है। जब तक ये सब तैयारियाँ होती हैं, तब तक लोग ज़ोर-

ज़ोर से मंत्र-पाठ और गान करते हैं। कावा तैयार हो जाने पर स्त्रियाँ, लड़कियाँ, लड़के तक, सब लोग, नारियल के पियालों में उसे भराते हैं। एक सबसे अधिक सुंदरी लड़की प्याले में कावा लेकर समागत सज्जनों में सर्वाधिक-श्रेष्ठ पुरुष के सामने ले जाती है। वह उस कावा को एक ही साँस में पी जाता है। उसके पी चुकने पर और लोग पीते हैं। किसी-किसी टापू में कावा बनाने का काम केवल कुमारिकाओं ही को करना पड़ता है।

अतिथि-सत्कार करने में सामोआ के मूल निवासी सभ्य देश-वालों से भी बढ़े-चढ़े हैं। वहाँ प्रत्येक गाँव में एक-एक ज़मींदार या राजा रहता है। अतिथियों के आदर-सत्कार का काम उसकी लड़की के सिपुर्द किया जाता है। उसे एक घर अलग दिया जाता है। बहुत-सी लड़कियाँ उसकी मदद के लिये नियत रहती हैं। जो लोग उस गाँव में बाहर से जाते हैं, वे उसी घर में ठहरते हैं। उन्हें सब तरह का आराम दिया जाता है। इसमें जो ख़र्च पड़ता है, वह सब गाँववाले चंदा करके देते हैं। वे लोग अच्छा-अच्छा मांस और मछली ख़ुद ही खा जाना अनुचित समझते हैं। इन चीज़ों को वे अतिथि-सत्कार के लिये रखते हैं।

अब तो नहीं, पर पहले किसी समय टोंगा आदि कई एक टापुओं में छोटे-छोटे लड़के देवताओं पर काटकर चढ़ाए जाते थे। रोगियों को नीरोग करने के अभिप्राय से यह बलिदान बहुधा दिया जाता था। प्रधान-प्रधान पुरुषों की स्त्रियों को, उनके पतियों को मृतक-संस्कार के समय बहुधा फाँसी दे दी जाती थी। पर औरों के साथ ऐसा व्यवहार नहीं किया जाता था।

मृतक-संस्कार ये लोग बड़े ही आडंबर से करते थे और अब भी करते हैं। कोई-कोई वर्ष-वर्ष, डेढ़-डेढ़ वर्ष तक सूतक मानते हैं। मरने के दूसरे दिन मुर्दे को गाड़ते और सब लोग सिर घुटाते हैं।

स्त्रियों तक को अपने-अपने प्यारे और सँवारे हुए बालों से हाथ धोना पड़ता है। मुर्दे की क़ब्र में उसके साथ उसके हार, गजरे, हड्डियाँ, सीपियाँ, कौड़ियाँ आदि रख दी जाती हैं। सूतक मनाने-वाले फटी हुई चटाइयों के टुकड़े ही कमर से लपेटते हैं और एक वृक्ष-विशेष की पत्तियों की मालिका पहनते हैं। उनके सूतक की यही पहचान है।

इन लोगों में बड़े आडंबर के साथ विवाह होता है। कभी-कभी एक कुमारिका के कई प्रणयी निकल आते हैं। उनमें लड़ा-इयाँ हो जाती हैं। यहाँ तक कि मार-काट तक की भी नौबत आ जाती है। गुप्त-विवाह किंवा गंधर्व-विवाह भी कभी-कभी हो जाते हैं और जायज़ समझे जाते हैं। प्रीति-ग्रंथि दृढ़ हो जाने से स्त्री-पुरुष का फिर कभी पारस्परिक वियोग नहीं होता।

सालोमन नाम के टापुओं का जो समूह है, उसके निवासियों की आकृति बड़ी ही विभीषक होती है। वे लोग क्रूर और कुटिल-स्वभाव के होते हैं। बलवान् भी बड़े होते हैं। शिकार में उनकी बराबरी और किसी टापूवाले नहीं कर सकते। लूट-पाट में भी उनका नंबर सबसे बढ़ा हुआ है। वे बहुधा अपनी नावों पर सवार होकर, धनुष-बाण तथा भाले धारण करके, पास-पड़ोस के टापुओं पर धावा मारते और जो कुछ पाते हैं, उठा लाते हैं। उनकी नावें बहुत बड़ी और बहुत मज़बूत होती हैं। प्रत्येक नाव में चालीस-चालीस, पचास-पचास आदमी सवार हो सकते हैं। अपने शत्रुओं पर जब वे धावा मारते हैं, तब उनके शरीर में पूर्वाधिक बल-विक्रम का संचार हो जाता है। जो उनके बाणों से मारे जाते हैं, उनके सिर वे काट लेते हैं। उन्हें वे अपनी बस्तियों में जमा कर देते हैं। उनके क्रूर कर्म की वे सदा याद दिलाया करते हैं। धनुर्बाण और भाला ही उनके प्रधान शस्त्र हैं।

सालोमन टापू के निवासी अपने कान छेदकर उस छेद को धीरे-धीरे इतना बड़ा कर देते हैं कि उसके भीतर मोटी-मोटी लकड़ियाँ तक चली जाती हैं। एक साहब ने तो यहाँ तक लिखा है कि उस छेद के भीतर इन लोगों का सिर तक चला जाता है! कान भी इनके बहुत लंबे होते हैं। इनके बाल ऊपर को उठे और बिखरे हुए होते हैं।

इस द्वीप-पुंज में एक छोटा-सा टापू बोगेनविली नाम का है। इसके निवासियों को मनुष्य नहीं, राक्षस कहना चाहिए। वे मनुष्य-भक्षी हैं। अपरिचित आदमी उनसे भागे नहीं बचता। पकड़कर उसे वे फ़ौरन् खा जाते हैं। लड़ाकू ऐसे होते हैं कि पड़ोस के टापुओं पर अकारण चढ़ाई करके वहाँवालों के सिर काट लाते हैं। मनुष्य मारना और मारकर खा जाना उनके लिये एक खेल है। आर० लाइडेकर नामक एक साहब ने अपनी एक किताब में ऐसा ही लिखा है।

[सितंबर १६११

लंबे होंठवाले जंगली आदमी

कुछ समय हुआ, योरप में एक कंपनी थी। वह विलक्षण-विलक्षण जीव-जंतुओं का रोज़गार करती थी और अजीब-अजीब जंगली आदमी ढूँढ़कर अपने यहाँ रखती और लोगों को दिखाकर रुपया कमाती थी। यह कंपनी अब टूट गई है। इसके यहाँ मेयर नाम के एक साहब नौकर थे। उन्होंने कहीं सुना कि अमेरिका की अमेज़न नदी के किनारे लंबे होंठवाले विचित्र आदमियों की एक जंगली जाति रहती है। इस जाति के आदमी अपने जंगल छोड़कर आज तक कभी सभ्य-भूमि में नहीं आए। इसलिये

दो-तीन लंबे होंठवाले आदमी वहाँ से लाने का विचार मेयर के मन में आया। वह दक्षिणी अमेरिका के ब्रेज़ील देश में पहुँचा। वहाँ जाकर उसने जो कुछ किया और उस पर जो कुछ बीती, वह सब उसी के मुँह से सुनिए। उसने अपनी सविस्तर कथा अँगरेज़ी के "वाइड-वर्ल्ड" नामक मासिक पुस्तक में प्रकाशित की है।

इन जंगली आदमियों का होंठ कोई ६ इंच नीचे को लटकता रहता है। इससे उनका रूप बहुत ही भयानक और बीभत्स मालूम होता है। उनके दो-एक नमूने प्राप्त करने का मैंने अपने मन में संकल्प किया। ब्रेज़ील के बाहिया नगर में पहुँचकर मैंने वहाँ के अफ़सरों से लंबे होंठवालों के देश में जाने की आज्ञा माँगी। मेरी प्रार्थना नामंज़ूर हुई। मुझसे कहा गया कि एक भी लंबे होंठवाला आदमी अपने गाँव से बाहर नहीं भेजा जा सकता। भेजना तो दूर रहा, उनके गाँव के सौ मील आसपास तक भी किसी को जाने की आज्ञा नहीं मिल सकती। पर मैं नाउम्मेद न हुआ। मैं एक हफ़्ते तक बाहिया में रहकर वहाँ जाने की तरकीबें सोचता रहा। अमेज़न नदी के रास्ते से ही मैं वहाँ जा सकता था। रास्ता महीनों का था। कोई आदमी मुझे वहाँ ले जाने को राज़ी न था। बड़ी मुश्किलों से कप्तान रोबेरिओ नाम का एक आदमी मुझे मिला। उसके पास एक छोटा-सा जहाज़ था। अंटोनिओ नाम का एक गोआनी भी मुझे मिला। वह दुभाषिए का भी काम कर सकता था और रास्ता भी उसका देखा हुआ था। हम लोगों ने छिपकर जाने का निश्चय किया। कप्तान से मैंने वादा किया कि वह रास्ते में व्यापार भी कर सकेगा। छः महीने के खाने-पीने का सामान और गोली, बारूद, बंदूक़ आदि चीज़ें हम लोगों ने लीं। व्यापार की चीज़ें भी अंटानिओ ने जहाज़ पर

ला दीं। जंगली लोगों को देने लायक़ चीज़ें भी बहुत-सी हम लोगों ने साथ लीं। तीन-चार ख़लासी लेकर एक रात को हम सबने चुपचाप जहाज़ का लंगर उठाया। अमेज़न को फाड़ते हुए धीरे-धीरे हम आगे बढ़े।

अमेज़न बहुत चौड़ी नदी है। उसके मुँह की तरफ़, पश्चिम की ओर, हमारा जहाज़ चला। कई दिन चलने के बाद, किनारे पर, ब्रेज़ील गवर्नमेंट का एक क़िला मिला। उसे पार कर जाना मुश्किल था। अगर कोई देख लेता, तो हम लोग आगे न जा सकते। अँधेरी रात में, जहाज़ को पेड़ों की हरी-हरी डालों से तोप-तापकर, हम लोग क़िलेवालों की नज़र छिपा निकल गए। कोई डेढ़ महीने बाद हमारा जहाज़ पेरू-देश की सीमा पर पहुँचा। वहाँ से कुछ दूर आगे, गोयाज़ नाम के गाँव के पास, हम लोग ठहरे। अंटोनिओ और रोबेरिओ यहाँ तक पहले एक दफ़े आ चुके थे। उसके आगे वे न गए थे। गोयाज़ गाँव में यांगसिल नामक एक जंगली रहता था। वह उस गाँव का सरदार था। सभ्य आदमियों से कई दफ़े वह मिल चुका था। हम लोग उसके पास गए और बहुत कुछ इनाम देने का लालच देकर उसे अपने साथ लिया। उसने अपने बहुत-से साथियों को भी जहाज़ पर लिया। विना इन लोगों की मदद के लंबे होंठवालों के देश तक पहुँचना असंभव था। ये लोग उन जंगलियों से वाक़िफ़ थे और उनकी बोली भी समझ सकते थे।

गोयाज़ में मालूम हुआ कि जहाँ हम लोग जा रहे हैं, वहाँ-वाले बड़े ही भयंकर जीव हैं। उनके होंठ इतने लंबे हैं कि उन्हें उलटकर वे अपना सारा चेहरा ढक सकते हैं। वे बड़े ही लड़ाकू और विश्वासघाती हैं। वे बहुधा पेड़ों ही पर रहते हैं और कोई जानवर ऐसा नहीं, जिसका मांस न खाते हों। लुटेरे भी वे बहुत

बढ़े-चढ़े हैं। जहाज़ के साथ हमने गोयाज़ से ६ नावें लीं। एक-एक नाव पर छः-छः आदमी सवार हुए। जहाज़ पर यांगसिल और उसके दस आदमी चढ़े। आख़िरकार हम लोग वहाँ से रवाना हुए और तीन दिन बाद लंबे होंठवालों की बस्ती के पास पहुँचे। वहाँ से उन लोगों का गाँव कुछ ही घंटों का रास्ता था। यहीं हम लोगों ने जहाज़ का लंगर डाला। दूसरे दिन वहाँ से हम लोग तीन नावों पर आगे बढ़े। सब मिलाकर हम ३२ आदमी थे। कुछ आदमी जहाज़ पर रह गए। कप्तान अंटोनिओ और हमने अपनी-अपनी बंदूक़ें और कारतूस साथ लिए। हम लोगों ने सोचा कि कहीं जंगली आदमी हम पर हमला न करें। इसलिये हम पहले ही से तैयार होकर चले। कपड़े भी हमने ख़ूब चमकते-दमकते पहने।

हमें चले अभी दो ही घंटे हुए थे कि हमने ६ लड़ाकू नावें अपनी तरफ़ आते देखा। प्रत्येक नाव पर दस-दस जंगली आदमी सवार थे। उन्हें देखते ही हमने अपनी नावें रोक दीं। यांगसिल खड़ा हो गया। उसने अपने दोनों हाथ ऊपर उठाकर लंबे होंठ-वालों की भाषा में चिल्लाकर कुछ कहना शुरू किया। इस पर उन लोगों ने भी अपनी नावें रोक दीं। कुछ देर में हम लोग एक दूसरे के पास आ गए। मैंने पहलेपहल लंबे होंठवालों को अच्छी तरह देखा। मुझे बे-तरह घृणा हुई। ऐसा बीभत्स रूप मैंने कभी नहीं देखा था। ऐसे घृणोत्पादक, ऐसे मैले, ऐसे मरकटाकार आदमी पृथ्वी की पीठ पर शायद ही और कहीं हों। आदमी नहीं, आदमी की शकल के वे पूरे जानवर थे। आदमी भी इतने मक-रूह हो सकते हैं, इसका मुझे विश्वास ही न था। इन जंगली लोगों का सरदार एक नाव पर खड़ा था। ऊँचाई में वह ६ फुट होगा। सिर खुला था। उस पर लंबे-लंबे बाल थे। बालों की

जटाएँ नीचे पीठ पर लटक रही थीं। और होंठ ! कुछ न पूछिए। कोई हाथ-भर नीचे लटक रहा था। उसने उसके चेहरे को बड़ा ही भयंकर बना दिया था। वह चिल्ला रहा था और अपनी काली-काली भुजाएँ पागल की तरह इधर-उधर फेंक रहा था। मालूम होता था कि उस पर कोई भूत सवार है। बाक़ी के असभ्य जंगली अपने होंठों को चूस-चूसकर ऐसा अजीब शब्द कर रहे थे कि देखते डर मालूम होता था। सच मानिए, ऐसा दृश्य मैंने कभी पहले न देखा था।

कुछ देर बातचीत होने के बाद यांगसिल ने कहा—सब ठीक है; कुछ डर नहीं। सरदार साहब कहते हैं कि हम लोग उनके साथ उनके गाँव चलें। वहीं हमारी ख़ातिर-तवाज़ो होगी और सौदा-सुलुफ भी वहीं होगा। यांगसिल ने सरदार से कहा कि मैं एक बादशाह का बेटा हूँ और सरदार की प्रभुता, शक्ति और बहादुरी का हाल सुनकर उसकी बीबियों के लिये उम्दा-उम्दा चीज़ें नज़र करने लाया हूँ। यह सुनकर सरदार साहब बहुत ख़ुश हुए। हम लोगों ने उसके गाँव की ओर प्रस्थान किया। प्रत्येक जंगली के हाथों में भाला और धनुर्बाण था। तीरों से भरा हुआ चमड़े का तरकस कंधे से लटकता था। तीर ज़हर से बुझे हुए थे। दो घंटे बाद हम लोग उनके गाँव के पास पहुँचे और किनारे पर क़दम रक्खा। उनकी औरतों को देखकर मैं काँप उठा। वे मर्दों से भी ज़ियादा घृणोत्पादक थीं।

हम लोगों को सैकड़ों जंगली आदमियों ने घेर लिया। औरत, मर्द, लड़के सब एक जगह इकट्ठे हो गए। सब नंगे थे। बहुत देर तक बातचीत के बाद एक पेड़ के नीचे हम लोग जमा हुए। मुझे जो कुछ कहना होता, वह अंटोनिओ से कहता। अंटोनिओ यांगसिल से, और यांगसिल सरदार से। करते क्या, बात करने

का और कोई साधन ही न था। एक दूसरे की बात ही न समझता था। मैंने कहा, मैं तीन आदमियों को अपने साथ ले जाना चाहता हूँ। वे अच्छी तरह रक्खे जायँगे। किसी बात की तकलीफ़ न होने पावेगी। वर्ष-डेढ़ वर्ष बाद वे फिर यहीं लाकर छोड़ दिए जायँगे।

सरदार के आदमियों ने हमें रोटी और फल खिलाए। उसने कहा, आज रात को यहीं रहिए और हम लोगों का नाच देखिए। यह बात हमें मंजूर न थी। डर लगा कि रात को कहीं ये लोग हमला न करें। मैंने कहा, तुम लोग हमारे जहाज़ के पास आओ। वहीं नाच दिखाना, वहीं पर मैं तुम्हें वे चीज़ें भी नज़र करूँगा, जो बादशाह ने भेजी हैं। सरदार ने यह बात मान ली। हमारे साथ ही कप्तान ने, इस बीच में, खूब सौदा किया। बहुत-सी जंगली चीज़ें उन लोगों से बदले में लीं।

हम सब अपनी नावों पर सवार होकर जहाज़ की तरफ़ चले। आधी दूर तक जंगली सरदार, अपनी चार नावों के साथ, हमें पहुँचाने आया। उन्हें डराने के लिये हम लोगों ने अपनी बंदूकें छोड़ीं। "धड़ाम", "धड़ाम" आवाज़ें हुईं। जंगली लोगों पर इसका बड़ा असर हुआ। वे चकित होकर इधर-उधर देखने लगे। कुछ देर नाव चलाना भी वे भूल गए। जब वे लोग लौटने लगे, तब मैंने सरदार से कहा कि तीन छोटे सरदार मेरे साथ जहाज़ तक चलें, तो अच्छा हो और जब तक सरदार साहब नाच दिखाने आवें, तब तक वे वहीं रहें। मैंने समझा था कि इस बात को वह मंजूर न करेगा। पर उसने मान लिया। यह देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ।

जहाज़ पर पहुँचकर हमने उन तीन लंबे होंठवालों को खाना खिलाया और अच्छी तरह रक्खा। मैंने उनसे अपने साथ चलने

को कहा। उन्होंने आपस में कुछ देर तक सलाह की और चलने पर राज़ी हो गए। यह सुनकर मैं बहुत ख़ुश हुआ। जहाज़ की सफ़ाई होने लगी। झंडियाँ लगाईं जाने लगीं। सुबह हम लोग अपने जंगली मेहमानों की मार्ग-प्रतीक्षा बड़े चाव से करने लगे। कुछ दिन चढ़े दस नावें दूर से आती हुई देख पड़ीं। हमारे जहाज़ पर दो छोटी-छोटी तोपें भी थीं। उनसे सलामी दागी गई। तब तक वे लोग पास आ गए। मैंने हुक्म दिया कि सिर्फ़ सरदार और उसके १५ साथी जहाज़ पर आवें। उन्होंने वैसा ही किया। उनके आने पर मैंने उन्हें बैठने की जगह दी। जहाज़ को देखकर वे लोग आश्चर्य में डूब-से गए। उसे देखकर वे भाँति-भाँति की चेष्टाएँ करने लगे। कोई नाचने लगा, कोई कूदने लगा, कोई होंठ हिलाने लगा।

सरदार और उसके साथियों के बैठने पर मैंने कहा, मैं तुम्हारे आने से बहुत प्रसन्न हुआ। मैंने कई चीज़ें सरदार को नज़र कीं। उनमें आइने भी थे। आइनों में अपना-अपना प्रतिबिंब देखकर वे लोग बे-तरह ख़ुश हुए। उन्होंने उनको कोई जादू की चीज़ समझी। उनको सामने रखकर वे बंदरों की तरह मुँह बनाने लगे। यह देखकर मुझे हँसी आने लगी। पर मैंने रोका। इतने में सरदार उठकर जहाज़ के किनारे गया और अपने आदमियों से एक बंडल ले लिया। उसे खोलकर पूमा नामक जानवर की एक ख़ूबसूरत खाल, बंदरों की १२ खालें और थोड़े से कोमल-कोमल पर उसने नज़र किए। पाँच मन "गटापरचा" भी उसने मँगाया। उसे देखकर कप्तान साहब की छाती गज़-भर चौड़ी हो गई। आप मारे ख़ुशी के फूल उठे। तीन घंटे तक उन जंगली जीवों ने जहाज़ का एक-एक कील-काँटा तक देख डाला। दो दिन बाद लौटकर नाच दिखाने का उन्होंने वादा किया। तब वे अपने गाँव को

रवाना हुए। साथ में वे उन तीन आदमियों को भी लेते गए।

मैंने समझा कि कामयाबी में देर नहीं। ये लोग ज़रूर दो-तीन आदमी मेरे साथ भेजने पर राज़ी हो जायँगे। हम लोग चुपचाप उनका रास्ता देखने लगे। तीन दिन की इंतिज़ारी के बाद वे लोग आए। स्त्री, पुरुष, बच्चे मिलाकर सब ७० थे। नदी के दूसरे किनारे पर उन्होंने डेरा डाला। हम लोग उनका नाच देखने के लिये उनके डेरे पर जाने लगे और वे लोग हमारे जहाज़ पर आने लगे। कोई एक हफ़्ते तक यह कारखाई जारी रही। इस दरमियान में कप्तान रांबेरिओ ने १० मन गटापरचा लिया। अब हम लोगों ने लौटने की ठानी। पिछले तीन-चार दिनों से वे पहलेवाले तीन जंगली सरदार जहाज़ पर ही सोने लगे थे। वे हम लोगों के साथ चलने को एक पैर के बल तैयार थे। तैयार थे या नहीं, यह बात तो अभी मालूम हो जायगी ; पर ये अपनी तैयारी ज़ाहिर ज़रूर करते थे। हम लोगों ने सलाह करके चुपचाप एक रात को चल देना विचारा। हमने कहा, ऐसा न हो जो कहीं इनका सरदार इन तीनों को हमारे साथ न जाने दे। इससे बेहतर यही होगा कि हम लोग विना ख़बर किए ही चल दें।

अँधेरी रात में दो बजे हमने जहाज़ का लंगर उठाया। हमारी नावें भी हमारे साथ-साथ चुपके-चुपके चलीं। कोई एक घंटे तक हम लोग चले गए। कोई विशेष बात नहीं हुई। पर कुछ देर में किनारे पर आदमी चलते हुए मालूम हुए। यांगसिल ने रँग-ढँग देखकर कहा, हम पर हमला होना चाहता है। उसने अपने नाव-वालों से कहा, नाव छोड़कर फ़ौरन् जहाज़ पर आ जाओ और जी-जान से लड़ने के लिये तैयार हो। नहीं, मौत अब दूर नहीं। उन लोगों ने इसकी फ़ौरन् तामील की। जहाज़ पर उनके आते ही किनारे पर भयंकर चिल्लाहट शुरू हुई और तीरों की वर्षा होने

लगी। हम लोगों ने समझा कि हमला हुआ। सबने अपनी-अपनी बंदूक़ भरकर हाथ में ली। दोनों तोपें भी भरी गईं।

इतने में मैंने देखा कि वे तीन लंबे होंठवाले, जो जहाज़ पर सोए थे, भागने की कोशिश कर रहे हैं। मैंने उन्हें पकड़ा। बहुत धमकाने पर उन्होंने भागने का कारण बतलाया। उन्होंने कहा कि हमारी दिली इच्छा तुम्हारे साथ जाने की हरगिज़ न थी। हम तो सिर्फ़ इसलिये जहाज़ पर आए थे, जिसमें यहाँ की सब बातें जान लें और तुम्हारे जाने की ख़बर सरदार को दें। क्योंकि यह निश्चय हो गया था कि ज्यों ही तुम लोग यहाँ से जाने की तैयारी करो, त्यों ही तुम पर हमला किया जाय। यह सुनकर मैं क्रोध से जल उठा। मैंने इन दग़ाबाज़ों को जहाज़ के भीतर क़ैद कर रखा।

अब तक जहाज़ पर बाण-वर्षा बराबर जारी थी। यांगसिल के दो आदमी घायल भी हो चुके थे। कुछ देर में उन जंगली असभ्यों की कोई तीस नावों ने जहाज़ को घेर लिया। उनसे उतरकर वे जहाज़ पर चढ़ने लगे। पर यांगसिल के आदमियों ने बड़ी बहादुरी से उनका मुक़ाबला किया। ज्यों ही वे जहाज़ पर चढ़े, त्यों ही हम लोगों ने उन्हें पानी में फेंका। उनका सिर जहाज़ पर देख पड़ते ही वे बेरहमी से ढकेले गए। एक आदमी ऊपर चढ़ आया। मारने-पीटने पर उसने भी क़बूल किया कि सरदार का इरादा था कि जहाज़ पर क़ब्ज़ा करके जो कुछ उस पर हो छीन लिया जाय और हम सब लोग एक-एक करके मार डाले जायँ। अब हमने जाना कि इन कमबख़्तों ने क्यों हमारी इतनी ख़ातिर की थी और क्यों इतनी चीज़ें नज़र की थीं। उन्होंने समझा था कि रबर, चमड़ा और गटापरचा आदि थोड़े ही जाने पावेंगे। अंत को वह सब हमी छीन लेंगे।

हम लोगों ने सोचा कि अब इन जंगली जीवों को अच्छी तरह सज़ा देना चाहिए। खूब लक्ष्य करके गोलियाँ छोड़ी जाने लगीं। दोनों तोपों में भी बत्ती दी गई। फ़ायर होते ही लंबे होंठवालों की कितनी ही नावें उलट गईं। कितने ही जंगली पानी में ग़ोते खाने लगे। कितने ही डूबे। कितने ही गोलियाँ और गोले खाकर मरे। इससे वे लोग बे-तरह घबरा गए। पर उन्होंने पीछा न छोड़ा। बराबर तीरों की वर्षा करते ही रहे। इतने में सबेरा हुआ, हमने देखा, ३० नहीं, ४० नावें हमारा पीछा कर रही हैं। इस पर हम लोगों ने जहाज़ की चाल तेज़ कर दी। यह देखकर लंबे होंठवाले और भी जोश में आकर लड़ने लगे। वे जहाज़ के बहुत पास आकर उस पर चढ़ने लगे। अब तक हम लोगों के तीन आदमी मर चुके थे और ८, १० घायल हो चुके थे। हमारी हालत ख़राब हो रही थी।

हमने फिर तोपों में बत्ती दी और गोले छोड़े। पास की कई नावें डूबीं और उन पर जो लोग सवार थे उड़ गए। इतने में हमने देखा कि कई नावें जहाज़ के नीचे पहुँच गईं। कितने ही जंगली जहाज़ पर चढ़ आए। उनसे हमारे आदमियों ने मल्ल-युद्ध शुरू कर दिया। फल यह हुआ कि हम लोगों ने उन जंगलियों को जहाज़ से मार भगाया। जब उन लोगों ने देखा कि बल-पूर्वक लड़कर वे जहाज़ को नहीं छीन सकते, तब उन्होंने चिल्ला-चिल्लाकर अपने क़ैदियों को माँगना शुरू किया। यांगसिल ने कहा, अब बचने का सिर्फ़ यही एक उपाय है कि जिन जंगली लोगों को हमने क़ैद कर लिया है, उन्हें छोड़ दें। इससे ये लोग शांत हो जायँगे। अन्यथा बराबर पीछा करते रहेंगे।

यह बात सबको पसंद आई। एक क़ैदी को हमने जहाज़ पर खड़ा किया। हमारे कहने पर उसने ज़ोर से आवाज़ लगाई और

अपने सरदार से कहा कि यदि बाणों की मार बंद की जाय और जहाज़ पर हमला बंद हो, तो हम लोग छोड़ दिए जायँगे। यह सुनकर लंबे होंठवाले जंगलियों ने आपस में कुछ देर तक सलाह-मशविरा किया। उन्होंने हमारी शर्त मान ली। इस पर हमने कहा कि तुम लोग अपने हथियार किनारे पर रख आओ। तब तक हम लोग तुम पर वार न करेंगे। यह भी उन्होंने मंजूर कर लिया। एक घंटे के भीतर ही वे अपने अस्त्र-शस्त्र किनारे पर रख आए और ख़ाली हाथ अपनी-अपनी नावों पर आ गए। तब हमने उनके क़ैदियों को छोड़ दिया और तेज़ी के साथ घर की तरफ़ जहाज़ चलाया। इस लड़ाई में हमारे ३ आदमी जान से मारे गए और ११ घायल हुए। उन जंगली असभ्यों का नुक़सान इससे बहुत अधिक हुआ होगा।

यांगसिल के गाँव पहुँचकर हम लोग वहाँ दो-तीन दिन ठहरे। फिर वहाँ से रवाना हुए और २९ दिन बाद, जहाँ से जहाज़ पर निकले थे, वहाँ पहुँचे। हम लोग बहुत थक गए थे। बीमार भी हो गए थे। मुसीबतें झेलने से हम लोगों का बदन आधा न रह गया था। ख़ैर, ग़नीमत हुई, जो ज़िंदा लौट तो आए।

[एप्रिल १९०९

भेड़ियों की माँद में पले हुए लड़के

कोई चालीस-पचास वर्ष पहले इन प्रांतों में बेशुमार भेड़िए थे। अब भी हैं, पर कम हैं। जब से गवर्नमेंट ने इनाम मुक़र्रर किया, तब से नट और कंजर लोगों ने इनकी संख्या कम कर दी। पहले ये लोग भेड़ियों को न तो पकड़ते थे और न मारते थे। वे उलटा उनकी रक्षा करते थे। उनसे उन्हें प्राप्ति थी। भेड़िए छोटे-छोटे लड़कों को उठा ले जाया करते थे, ऐसे लड़कों के बदन पर जो ज़ेवर होता था, वह उनकी माँद के भीतर या इधर-उधर पड़ा रहता था। उसे ये लोग लाकर बेंच लिया करते थे। इसी से भेड़िए इनके यजमान हो रहे थे। हमारा जन्म-स्थान गंगा के किनारे है। गंगा में बहुत लंबा और घना कछार है। गंगा के किनारे-किनारे अनेक नाले हैं। कुछ नाले दूर-दूर तक चले गए हैं। चारों तरफ़ ज़मीन बेहद ऊँची-नीची है। छोटी-छोटी झाड़ियाँ भी बहुत हैं। इससे यहाँ अब भी बहुत भेड़िए रहते हैं। वे कभी-कभी गाँव के भीतर तक चले आते हैं और घर से बकरियों और बछड़ों को उठा ले जाते हैं। कोई दो वर्ष हुए, एक बार एक भेड़िया एक ऊँची दीवार—कोई छः हाथ ऊँची—कूद कर भीतर से एक बहुत बड़ी बकरी उठा ले गया। बकरियाँ, घर के भीतर, मज़बूत रस्सियों से बँधी रहती हैं। पर भेड़िए इतने ज़ोरावर होते हैं कि एक ही झटके में वे रस्सी को तोड़ डालते हैं। और अपना शिकार उठा ले जाते हैं। यदि रस्सी बहुत मज़बूत हुई और तोड़े न टूटी, तो बकरियों की गर्दन वे ऐसी सफ़ाई से काट देते हैं, जैसे किसी ने तलवार से काट दी हो। इस दशा में सिर रस्सी से बँधा रह जाता है और धड़ भेड़िए की पीठ पर लद कर बाहर चला जाता है।

एक दिन, जुलाई १९०९ में, शाम के वक़्त गंगा के किनारे, हम एकांत में घूम रहे थे कि बड़े-बड़े दो भेड़िए हमें कुछ दूर पर देख पड़े। हमारे पास सिर्फ़ एक पतली छड़ी थी, पर हम जानते थे कि भेड़िए अकसर आदमियों पर हमला नहीं करते। उनको देखकर हम एक पेड़ से पीठ भिड़ा कर खड़े हो गए। वे दोनों भेड़िए हमारे सामने से होकर निकले। जब हमारे और उनके बीच में कोई दस गज़ का फ़ासला रह गया, तब उन दोनों ने अपने बदन के रोएँ इतने फुलाए कि वे दूने मोटे मालूम देने लगे। उन्होंने बदन को फुलाकर हमारी तरफ़ सिर्फ़ एक नज़र से देखा और चलते हुए। हमने घर आकर लोगों से इसका ज़िक्र किया। इस पर भेड़ियों का महाभारत शुरू हुआ। कई बुड्ढे आदमियों ने कोई सौ वर्ष तक के भेड़ियों के पुराने क़िस्से कह सुनाए। मालूम हुआ कि हमारे गाँव से, पुराने ज़माने में कई लड़कों को भेड़िए उठा ले गए हैं। पड़ोस के गाँव से एक दफ़े एक भेड़िया एक ब्राह्मण के तीन वर्ष के लड़के को उठा ले गया। वह चार-पाँच वर्ष तक भेड़ियों की माँद में रहा। एक दिन वह भेड़ियों के साथ बाहर खेल रहा था कि किसी ने देखा। तब वह पकड़ा गया। बड़ी मुश्किलों में उसने अन्न खाना सीखा। वह बहुत दिन तक जीता रहा, पर जब तक रहा, गूँगा रहा और सिवा गाय, भैंस चराने या कंडे पाथने के और किसी काम के लायक़ नहीं हुआ। हमने तो यह ज़रूर सुन रक्खा था कि भेड़ियों की माँद में लड़के पाए गए हैं, पर इतना पतेवार हाल हमने उसी दिन सुना। सुनकर हमें बड़ा कुतूहल हुआ।

इसके कुछ ही दिनों बाद हमने मेजर-जनरल डब्लू० एच० स्लीमन की एक किताब, अँगरेज़ी में, पढ़ी। वाजिदअली शाह के समय में स्लीमन साहब लखनऊ में रेज़िडेंट थे। जब मुल्क की

हालत बहुत ही अबतर हो गई, तब गवर्नर जनरल के हुक्म से स्लीमन साहब सब बातों को प्रत्यक्ष देखने के लिये दौरे पर निकले। यह दौरा १८४६-५० ईसवी में उन्होंने किया । इसी दौरे का वृत्तांत, दिनचर्या के रूप में पूर्वोक्त पुस्तक में है । अवध में एक ज़िला सुल्तानपुर है। २८ दिसंबर, १८४६ को स्लीमन साहब एक नदी के पास, कुछ दूर पर, ठहरे थे। यहाँ उनको अनेक लड़कों का पता लगा, जो भेड़ियों की माँद में पाए गए थे। उन सबका हाल साहब ने अपनी पुस्तक में प्रकाशित किया है। उसी ही को हम यहाँ पर लिखते हैं। इस पुस्तक के भेड़ियोंवाले भाग को पढ़कर हमने उसका ज़िक्र अपने एक मित्र से कानपुर में, किया। उन्होंने इस विषय का एक प्रत्यक्ष देखा हुआ उदाहरण हमसे कह सुनाया। उन्होंने कहा—यह बात कोई ३० वर्ष की है। हमारे यहाँ शोरे का काम होता था। हमारी उम्र उस समय दस-ग्यारह वर्ष की होगी। हमारे गोदाम में बहुत आदमी काम करते थे। उनमें से कुछ कंजर भी थे। उनको कहीं ख़बर लगी कि कानपुर से थोड़ी दूर पर किसी भेड़िए की माँद में एक लड़का है। वे वहाँ गए और खोदकर उसे निकाल लाए। हम शाम को जब स्कूल से आए, हमने सुना कि गोदाम में एक अजीब लड़का आया है। हमने बस्ते को घर में पटका और गोदाम को भगे। वहाँ जाकर हमने देखा कि आदमियों की भीड़ लगी हुई है। भीड़ के भीतर एक नौ-दस वर्ष का लड़का रस्सी से बँधा हुआ बैठा है। उसके बदन पर लंबे-लंबे बाल हैं, नाख़ून बढ़ रहे हैं; आँखें ख़राब हो रही हैं; पलकें पक-सी गई हैं; हाथ-पैर के बल चलने से घुटनों और हथेलियों का चमड़ा कड़ा हो गया है; पैर कुछ टेढ़े हो गए हैं और बदन से बदबू आ रही है। छेड़ने पर वह सिर्फ़ हू-हू-हू करता था। इसके सिवा वह और कुछ न बोल सकता था। हम नहीं

कह सकते कि फिर उसका क्या हुआ और वह कहाँ गया।

अच्छा, अब स्लीमन साहब की किताब में लिखी हुई बातें सुनिए। जो कुछ उन्होंने लिखा है, उसे हम वैसे ही हिंदी में लिखे देते हैं। सुनिए—

सुल्तांपुर से १० मील पर एक जगह चाँदौर है। वहाँ एक लड़का है। ढाई वर्ष हुए वह एक भेड़िए की माँद में जीता पकड़ा गया था। ज़िले के गवर्नर ने एक सवार को लगान वसूल करने के लिये चाँदौर भेजा था। चाँदौर के पास एक नदी है। दोपहर के समय वह सवार उस नदी के किनारे-किनारे जा रहा था। उसने एक बहुत बड़े मादा भेड़िए को अपनी माँद से निकलते देखा। उसके पीछे उसके तीन बच्चे निकले। और एक लड़का। लड़का हाथ-पैर के बल चलता था। जान पड़ता था कि उस लड़के और भेड़िए के बच्चों में घनी मित्रता है और उन बच्चों की माँ उस लड़के की भी रक्षा अपने ही बच्चों के समान करती है। वे सब नदी के किनारे गए और उन्होंने अच्छी तरह पानी पिया। सवार अपने घोड़े पर बैठा हुआ चुपचाप यह सब देख रहा था। पर भेड़ियों ने उसे नहीं देखा। जब वे पानी पीकर लौटे, तब सवार ने उनका पीछा किया, और उस लड़के को पकड़ना चाहा। पर वे भागे। लड़का भी उस मादा भेड़िए और बच्चों के साथ तेज़ी से भागा; उनसे ज़रा भी पीछे न रहा। अंत को वे सब माँद में घुस गए। सवार साहब उसको न पकड़ सके, तब उसने चाँदौर से कुछ आदमियों को बुलवाया। उन्होंने कुदालियों से माँद को खोदना शुरू किया। जब वे उसे ८ फुट खोद चुके, तब वह भेड़िया तीनों बच्चे और उस लड़के को लेकर बाहर निकला और भागा। सवार ने फिर उनका पीछा किया। उसके साथ और भी कई आदमी दौड़े। कुछ देर में वह उन बच्चों और उस लड़के के पास पहुँच

गया और उनको दूसरी तरफ़ भगाया। अर्थात् जिस तरफ़ से आदमी दौड़े आ रहे थे, उस तरफ़। आख़िर को वह लड़का पकड़ा गया और भेड़िए के बच्चे छोड़ दिए गए।

सब लोग उस लड़के को गाँव में ले गए। वहाँ उन्होंने उसे एक मज़बूत रस्सी से बाँधा। क्योंकि वह लड़का आदमियों को देखकर बे-तरह घबराता था और जहाँ कोई गढ़ा या बड़ा-सा छेद देखता था, वहीं घुसने की चेष्टा करता था। उन्होंने बहुत चाहा कि वह बोले; पर सिवा क्रोध से भरी हुई गुर्राहट के वह कुछ भी न बोल सका। बहुत दिन तक वह उस गाँव में बँधा रहा। उसे देखने के लिये आदमियों की भीड़ रोज़ लगी रहती थी। जब वह किसी बड़े आदमी को देखता, तब बहुत डर जाता और भागने की कोशिश करता। पर यदि कोई लड़का उसके पास आता, तो वह कुत्ते की तरह दाँत निकालकर क्रोध से उस पर झपटता और उसे काटने की चेष्टा करता। यदि मांस अच्छी तरह पकाकर या उबालकर उसके सामने रक्खा जाता, तो वह उसे छूता तक नहीं; घृणापूर्वक वह उसकी तरफ़ से अपना मुँह फेर लेता। पर यदि कच्चा मांस उसे दिया जाता, तो वह बहुत ख़ुश होता। वह तुरंत उसे, कुत्ते की तरह ज़मीन पर रखकर अपने पंजों से दबाता और दाँतों से नोच-नोचकर खा जाता। खाते वक़्त वह किसी को अपने पास न आने देता। पर यदि कोई कुत्ता उसके खाने में शरीक होना चाहता, तो वह कुछ न बोलता। वह सवार चार-पाँच दिन तक उस लड़के के पास रहा। फिर उसने उसे हसनपुर के राजा की निगरानी में छोड़ दिया और आप गवर्नर के पास लौट आया। उसने यह वृत्तांत गवर्नर से कहा। गवर्नर ने राजा से कहकर उस लड़के को कप्तान निकलेट्स के पास भिजवा दिया। कप्तान साहब अवध लोकल इन्फैंट्री की

पहली रेजिमेंट के कमांडिंग ऑफ़िसर थे। जब यह लड़का चाँदौर को लाया गया था, तब हसनपुर के राजा मौजूद थे। यह वृत्तांत मैं उन्हीं की रिपोर्ट के आधार पर लिख रहा हूँ।

कप्तान साहब ने इस लड़के को अपने नौकरों के सिपुर्द कर दिया है। वे उसे बहुत अच्छी तरह रखते हैं, पर वह बोलता नहीं। बोलता क्या, वह बोल ही नहीं सकता। उसके मुँह से एक शब्द भी नहीं निकलता। वह किसी को तंग नहीं करता; चुपचाप पड़ा रहता है। पर यदि कोई उसे तंग करता है, तो क्रोध से वह बे-तरह गुर्राता है। वह सब चीज़ें धीरे-धीरे खाने लगा है। परंतु कच्चा मांस उसे बहुत पसंद है। उसे वह खाता ही चला जाता है, मानों वह महीनों का भूखा हो। यदि घड़ा-भर मठा उसके सामने रख दिया जाता है, तो वह सब-का-सब एक ही साँस में पी जाता है। चाहे जितनी सरदी पड़े, वह अपने बदन पर कपड़ा नहीं बरदाश्त कर सकता। इस साल जब बहुत अधिक जाड़ा पड़ने लगा, तब उसे ओढ़ने के लिये एक लिहाफ़ दिया गया। पर उसने किया क्या? फाड़कर उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले और रुई-समेत थोड़ा-थोड़ा करके अपनी रोज़ाना रोटी दाल के साथ उसे खा गया। उसे हड्डियाँ चूसने से बड़ा प्रेम है। यदि वे बे-पकी हों, तो फिर कहना ही क्या है। हड्डियों को वह उतनी ही आसानी से चाबता है, जितनी आसानी से कि वह मांस खाता है। बकरी के एक बड़े बच्चे के आधे हिस्से को वह एक दफ़ा में, बिना किसी प्रयास के, खा जाता है। छोटे-छोटे कंकड़ और मिट्टी खाने का भी उसे बड़ा शौक़ है। उसके अंग बहुत ही भद्दे हैं; उसकी सूरत इतनी बुरी है कि देखकर घिन लगती है। उसकी आदतें जितनी हैं, सब गंदी हैं। वह अब तक कुत्तों और गीदड़ों को बहुत चाहता है। चार पैरवाले जितने छोटे-छोटे जानवर हैं,

उन सबसे वह बहुत प्रसन्न रहता है। यदि वे उसके खाने के वक़्त पास आ जाते हैं, तो उनको अपने साथ ख़ुशी से वह खाने देता है।

कप्तान निकलेट्स ने अपनी १४ और १६ सितंबर १८५० ई० की चिट्ठियों में मुझे लिखा है कि वह लड़का अगस्त के अख़ीर में मर गया। जब तक वह जीता रहा, न कभी वह हँसा, न कभी वह मुसकिराया। जो कुछ उससे कहा जाता था, उसे वह प्रायः बिलकुल ही नहीं समझता था। उसके आसपास लोग क्या करते हैं, इसकी वह ज़रा भी परवा न करता था। न उसने किसी आदमी की परवा की, न किसी पर उसकी प्रीति हुई। उसके पास लड़के अकसर जाया करते थे। परंतु न कभी वह उनके साथ खेला और न खेलने की इच्छा ही उसने ज़ाहिर की। एक कुत्ते को वह अपने साथ खिलाया करता था। जब वह भूखा न होता था, तब वह उसी कुत्ते की पीठ ठोंकते हुए बैठा रहता था। यह कुत्ता उस लड़के का खाना बहुत अधिक खा लेता था। इससे लड़का भूखा रह जाता था और दुबला होता चला जाता था। यह देखकर कप्तान साहब ने, एक दिन, उसे गोली मार दी। पर उसके मरने का ज़रा भी रंज लड़के को न हुआ। जब लड़का पकड़ा गया था, तब उसके माँ-बाप ने उसे पहचाना था। परंतु जब उन्होंने देखा कि उसकी यह दशा है, तब उन्होंने उसे लेने से इनकार कर दिया। लड़का हसनपुर का था। पर उसके माँ-बाप अब हसनपुर में नहीं हैं। इससे लड़के की उम्र का ठीक-ठीक पता नहीं लग सकता। देखने से मालूम होता था कि जब वह पकड़ा गया था, तब उसकी उम्र कोई नौ या दस वर्ष की रही होगी। उसके बाद तीन वर्ष तक वह जीता रहा था। जब उसे कोई चीज़ दरकार होती थी, तब वह इशारों से उसे माँगता था; पर वह बहुत कम इशारे

जानता था। भूखा होने पर वह अपने मुँह पर हाथ रखता था। जब उसका खाना उससे कुछ दूर पर रक्खा जाता था, तब उसके पास कुत्ते की तरह चार पैर से (हाथ-पैर के बल) दौड़ जाता था; पर और मौक़ों पर उठकर वह कभी-कभी सीधा भी चलता था। आदमियों की संगति से उसे घृणा थी। खुशी से वह कभी आदमी के पास न बैठता था। जाड़ा, गरमी और बरसात की उसे ज़रा भी परवा न थी। परवा उसे किसी बात की भी न थी; थी सिर्फ़ खाने की। जब से वह कप्तान साहब के पास आया, तब से उसने कोई नटखटपन का काम नहीं किया। वह चुपचाप बैठा रहता था। उसे पकड़ने या बाँधने की ज़रूरत न होती थी। कोई दो वर्ष वह कप्तान साहब के नौकरों के पास रहा। मरने के कुछ मिनट पहले तक कभी एक शब्द भी वह अपने मुँह से नहीं बोला, पर मरने के समय उसने अपने सिर पर हाथ रखकर सिर्फ़ इतना कहा—"दर्द होता है" और पानी माँगा। बस, पानी पीते ही उसकी जान निकल गई।

सुल्तांपुर से बीस मील पूर्व एक जगह छपरा है। वहाँ एक आदमी अपनी स्त्री और लड़के के साथ रहता था। वह खेती करता था। लड़के की उम्र तीन वर्ष की थी। १८४३ ईसवी के मार्च महीने में वह गेहूँ और अरहर काटने के लिये अपने खेत को गया। उसकी स्त्री ने सिर पर टोकरी रक्खी और गोद में लड़के को लेकर वहीं, खेत में, सीला बीनने गई। इसके कुछ दिन पहले, जाड़ों में, लड़का आग के पास बैठा हुआ ताप रहा था कि एकाएक वह आग में गिर पड़ा और उसके पैर का दाहना घुटना जल गया। इससे वह बहुत दिन तक बीमार पड़ा था। पर अब वह अच्छा हो गया था। परंतु जलने का दाग़ घुटने पर था। बाप खेत काटने लगा; माँ नीचे गिरी हुई बालें बीनने लगी; लड़का वहीं मेंड़ पर

बैठकर खेलने लगा। इतने में एक झाड़ी से एक भेड़िया एकाएक निकला और लड़के को उठा ले गया। बाप तो कुछ दूर पर था, पर माँ नज़दीक ही थी। वह चिल्लाती हुई भेड़िए के पीछे दौड़ी। उसकी चिल्लाहट सुनकर गाँव के और भी आदमी दौड़ आए; पर तब तक भेड़िया नज़र से ग़ायब हो गया। और उस लड़के के माँ-बाप को सिर पटककर रह जाना पड़ा।

छः वर्ष तक इस लड़के का कुछ भी पता न चला। इस बीच में लड़के का बाप मर गया और माँ बेचारी अकेली रह गई। फ़रवरी १८४९ ईसवी में सिंगरामऊ से दो सिपाही आए। छपरा से सिंगारमऊ दस मील है। वह खोबई नदी के किनारे है। नदी के किनारे जंगल में जंगली सुअर बहुत रहते हैं। वे पानी पीने के लिये नदी के किनारे आया करते हैं। सुअरों की तलाश में वे दोनों सिपाही जंगल में, एक जगह, नदी से थोड़ी दूर पर बैठ रहे। उन्होंने देखा कि जंगल से भेड़िए के तीन बच्चे एक लड़के के साथ निकले और नदी में पानी पीने गए। जब वे पानी पीकर लौटे, तब सिपाहियों ने उन पर हमला किया। वहीं पास बीहड़ में उनकी माँद थी। उसी की तरफ़ वे चारों भागे। सिपाहियों ने उनका पीछा किया। वे खूब तेज़ी से दौड़े। भेड़िए के बच्चे तो निकल गए, पर लड़का माँद तक न पहुँचने पाया। बीच ही में एक सिपाही ने उसकी पिछली टाँग को पकड़कर उसे पीछे खींच लिया। इस पर वह बे-तरह बिगड़ा। उसने बड़े क्रोध में आकर उन सिपाहियों पर आक्रमण किया और उनको कई जगह पर काट खाया। सिपाहियों ने उसे दूर रखने के लिये अपनी बंदूक़ उसके सामने कर दी। उसने बंदूक़ की नली को अपने दाँतों से पकड़कर उसे बड़े ज़ोर से हिला दिया। बड़ी मुश्किलों में उन्होंने उसे किसी तरह पकड़ पाया। उसे वे अपने घर ले आए और कोई बीस दिन तक अपने यहाँ

रक्खा। इतने दिनों तक सिवा कच्चे मांस के और कुछ भी वे उसे नहीं खिला सके। उसने और कुछ छुवा तक नहीं। सिर्फ़ चिड़ियाँ और ख़रगोश वग़ैरह खिलाकर उसे उन्होंने ज़िंदा रक्खा। पर प्रतिदिन इस तरह का खाना उसे देने में उन्हें कठिनता होने लगी। इसलिये वे उसे कोइलीपुर के बाज़ार को ले गए। वहाँ उन्होंने उसे इस भरोसे पर छोड़ दिया कि लोगों को दया आवेगी, तो वे उसके खाने-पीने का प्रबंध कर ही देंगे। तब तक शायद उसके माँ-बाप का पता लग जाय और वे उसे ले जायँ। बाज़ार के दिन एक बार छपरा का एक आदमी कोइलीपुर आया। उसने उस लड़के को देखा और अपने गाँववालों से उसका हाल बयान किया। जब लड़के की माँ को यह ख़बर हुई, तब उसने उस आदमी से लड़के की सूरत-शकल का हाल पूछा। उसने कहा कि उसके बाएँ घुटने पर जल जाने का निशान है और कमर में, दोनों तरफ़, किसी जानवर के तीन-तीन दाँतों के भी निशान हैं। (कमर ही को पकड़कर भेड़िया उसे उठा ले गया था) यह सुनकर उस औरत को विश्वास हो गया कि वह लड़का उसी का है।

वह औरत कोइलीपुर के बाज़ार गई। वहाँ उसने अपने लड़के को पहचान लिया। उसके बदन पर पूर्वोक्त दो तरह के निशानों के सिवा एक और भी निशान उसे मिला। उसकी जाँघ पर भी एक निशान उसने देखा। वहाँ पर उसे एक दाग़ मिला। वह उस लड़के का जन्म-दाग़ था। वह लड़के को अपने घर ले गई। वहाँ जितने उसके पड़ोसी थे, सबने उसे पहचाना। दो महीने तक उस औरत ने उसे अपने घर पर रक्खा। जितने ज़मींदार और नंबरदार आसपास के गाँवों में रहते थे और जिनको शिकार का शौक़ था, वे उस लड़के के खाने के लिये बराबर शिकार भेजते रहे। उसकी माँ

कहती है कि जब यह लड़का प्यासा होता है, तब अपना मुँह पानी में डाल देता है, पर, साँस बाँधकर, पानी पीता है; कुत्ते की तरह थोड़ा-थोड़ा करके जीभ से नहीं पीता। उसके बदन से बहुत बुरी दुर्गंध आती है। जब उसकी माँ बाहर काम करने चली जाती है, तब वह जंगल को भाग जाता है। माँ ने बहुत कोशिश की, पर वह अपने मुँह से एक शब्द भी नहीं बोल सका। यदि उसे कुछ खाने को मिलता है, तो वह अपनी माँ के पीछे-पीछे चला जाता है; पर उस पर उसकी ज़रा भी प्रीति नहीं है। और न उसकी माँ ही की प्रीति उस पर है। दो महीने तक उसने लड़के को रक्खा। पर जब उसने देखा कि उससे उसका कुछ भी काम नहीं निकलता, तब उसने उसे गाँववालों के भिक्षा-दान के भरोसे छोड़ दिया। थोड़े दिनों में उसने रोटी खाना सीख लिया। और-और चीज़ें भी वह खाने लगा है; पर रात के वक़्त वह नियम से जंगल को चला जाता है। कभी-कभी वह मुँह से कुछ बरबराता है। पर उसके कहने का मतलब किसी की समझ में नहीं आता। भेड़िए के साथ हाथ-पैर के बल चलने से उसके पैरों के घुटने और बाँहों के जोड़ बहुत सख़्त हो गए हैं। यदि उसे कपड़ा पहना दिया जाता है, तो वह उतार डालता है और उतारने में कपड़े फट जाते हैं। अब तक उसे कच्चा मांस, पक्के की अपेक्षा, अधिक पसंद है। यदि सड़ा-गला मांस उसे मिल जाता है, तो वह उसे बहुत ख़ुशी से खाता है। गाँव के लड़के उसके साथ खेला करते हैं और मेंढक पकड़-पकड़कर उस पर फेंकते हैं। वह मेंढकों को पकड़ लेता है और खा जाता है। यदि कोई गाय या बैल मर जाता है और उसका चमड़ा खींच लिए जाने पर उसकी लाश पड़ी रह जाती है, तो वह वहाँ फ़ौरन् पहुँचता है और कुत्तों की तरह उसे खाने लगता है। यह लड़का अभी तक जीता है। इसकी माँ भी,

छपरा में, अभी तक बनी हुई है । यह बयान उसी ने अपने मुँह से लिखाया है ।

१८५० के नवंबर में कप्तान निकलेट ने हुक्म दिया कि यह लड़का मेरे (स्लीमन साहब के) पास भेजा जाय । उसकी माँ उसे लेकर चली । पर रास्ते में वह डर गया और जंगल को भाग गया, फिर वह पकड़े नहीं मिला । उसकी माँ वापस गई । यदि वह ज़िंदा रहा, तो लौट जायगा । और छपरा पहुँच जायगा । उसे वह अच्छी तरह पहचान गया है ।

एक लड़के का हाल हसनपुर बँधुवा के राजा ने मुझसे बयान किया है । यह घटना उनकी देखी हुई है । वे कहते हैं कि १८४३ ईसवी में एक लड़का हसनपुर में आया । जान पड़ता था कि भेड़ियों ने उसे पाला-पोसा था । उसकी उम्र १२ वर्ष की होगी । रंग उसका काला था । वह कच्चा-पक्का, दोनों तरह का, मांस खाता था । जब पहले-पहल वह आया, तब उसके सारे बदन पर छोटे-छोटे बाल थे । पर कुछ दिनों में धीरे-धीरे बदन के बाल गिर गए । इसका कारण यह था कि उसे खाने के साथ नमक भी मिलता था । और नमक में बाल गिरा देने की तासीर है । वह आदमियों की तरह पैरों के बल सीधा चल तो सकता था, पर बोल नहीं सकता था । वह जंगली जानवरों की तरह बोलता था । पर इशारा करने से मतलब समझ जाता था । एक बनिए की दूकान पर वह अक्सर बैठा रहता था । आख़िर को, एक दिन, उसके माँ-बाप ने उसे पहचाना और उसे वे घर ले गए । मालूम नहीं कि फिर उसका क्या हाल हुआ । हसनपुर में रहनेवाले सब लोग राजा साहब की इस बात का अनुमोदन करते हैं ।

सुल्ताँपुर से १२ मील पश्चिम एक गाँव चटकोरी है । १८४३ ईसवी में, वहाँ के रहनेवाले एक गड़रिए ने, एक दिन सुबह,

एक लड़के को एक भेड़िए के साथ हाथ-पैर के बल जाते देखा। बड़ी मुश्किलों से उसने उस लड़के को पकड़ पाया। वह बहुत तेज़ भागा; पर गड़रिए ने उसे पकड़ ही लिया। कुछ दिनों तक उसे उसने खिलाया-पिलाया और बोलना सिखलाने की कोशिश की। पर वह एक शब्द भी बोल न सका। आदमियों और लड़कों के पास बैठना उसे सख़्त नागवार था। वह उन्हें देखकर दूर भागता था। उस समय सुल्ताँपुर में कर्नल ग्रे, अवध लोकल इनफैंट्री के कमान पर, थे। उनके पास वह लड़का लाया गया। बहुत दिनों तक वह उनके पास रहा। पर एक दिन वह जंगल को भाग गया। नहीं मालूम कि फिर वह मिला या नहीं।

सुल्ताँपुर के ज़िले में, हसनपुर की रियासत में, एक गाँव बाँकेपुर है। वहाँ एक मुअज़्ज़िज़ ज़मींदार रहते हैं। उनका नाम है ज़ुल्फ़िक़ारख़ाँ। वे बयान करते हैं कि कोई आठ-नौ वर्ष हुए एक सवार उनके गाँव आया। उसके साथ एक लड़का था। उसकी उम्र कोई नौ या दस वर्ष की होगी। उसे उसने एक भेड़िए की माँद में पाया था। उसको वह अपने साथ न रख सका। इसलिये उसने उसे गाँव में छोड़ दिया। जो कुछ उसे दिया जाता था, वह खा लेता था। पर खाने के पहले उसे वह अच्छी तरह सूँघता था। और चीज़ों की अपेक्षा वह कच्चा मांस अधिक पसंद करता था। वह आदमी की तरह खड़ा होकर चलता था। पर उसके घुटनों और कुहनों पर निशान थे, जिनसे साबित था कि बहुत दिनों तक वह हाथ-पैर के बल चलता था। यदि उससे उस तरह चलने को कहा जाता, तो वह इतना तेज़ भागता कि कोई भी उसे पकड़ न सकता। यह नहीं मालूम हुआ कि कितने दिनों तक वह उस सवार के साथ रहा था और कितने दिनों में उसने पैरों के बल, आदमी की तरह चलना सीखा था। न वह बात कर सकता था और न

उसके मुँह से कोई सार्थक शब्द निकला ही था। इशारे वह समझ जाता था। और सुन खूब सकता था। यदि इशारे से उसे कोई समझा देता, तो खेत में कोई भी जानवर—बकरी, गाय, बैल या भैंस—उसके मारे न आने पाते। उस गाँव में एक ब्राह्मण रहता था। उसका नाम बुद्धू था। वही उस लड़के की निगरानी करता था। तीन महीने तक वह बुद्धू के पास रहा। इतने में उसके बाप को उसकी ख़बर मिली। वह एक गड़रिए का लड़का था। वह आया और उसे ले गया। उससे मालूम हुआ कि चार वर्ष हुए लड़के को एक भेड़िया, रात के वक़्त उठा ले गया था। उस वक़्त लड़के की उम्र छः वर्ष की थी। लड़के को बुद्धू के पास से जाना मंजूर न था। पर उसका बाप उसे ज़बरदस्ती घसीट ले गया। नहीं मालूम, फिर उसकी क्या दशा हुई। लड़के के बदन पर बाल न थे। कपड़ों से भी उसे नफ़रत न थी। गाँव के सब आदमियों ने इस घटना को सच बताया।

कोई सात वर्ष हुए एक शाही सवार एक नदी के किनारे-किनारे जा रहा था। बहराइच के ज़िले में एक जगह बौंडी उर्फ़ बमनौती है। वहाँ एक राजा हैं। उनका नाम हरदत्तसिंह है। उन्हीं के यहाँ यह सवार उस समय रहता था। उसने भेड़िए के दो बच्चों और एक लड़के को नदी में पानी पीते देखा। उसके साथ एक आदमी पैदल भी था। उन दोनों ने किसी तरह उस लड़के को पकड़ा। लड़के की उम्र कोई बारह वर्ष की होगी। सवार ने उस लड़के के हाथ बाँध दिए और अपने पीछे घोड़े पर उसे बिठा लिया। पर उसमें जंगलीपन और क्रूरता की मात्रा इतनी अधिक थी कि उसने उस सवार के कपड़े फाड़ डाले और कई जगह उसे बे-तरह काट खाया। वह उसे किसी तरह बौंडी ले आया। वहाँ राजा हरदत्तसिंह ने उसे खाने को दिया। जिस रस्से से वह

बँधा था, उसे कई दफ़े काट-काटकर वह भाग गया। तीन महीने तक वह वहाँ रहा। राजा हरदत्तसिंह इतने दिनों में उससे ऊब उठे और उसे उन्होंने छोड़ दिया। तब एक काश्मीरी भाँड़ ने उसे ले लिया। छः महीने तक उसने उसे रक्खा और उसकी परवरिश की। उसकी आदतें इतनी बुरी और गंदी थीं कि वह भी भाँड़ उससे आजिज़ आ गया और उसने भी उसे छोड़ दिया। इस तरह छूट-कर वह बौंडी के बाज़ार में आवारा घूमने लगा। एक दिन एक बूचर की दूकान से मांस का एक टुकड़ा लेकर वह भाग गया। इसके बाद एक दिन उसने एक बनिए की दूकान की कुछ चीज़ें उलट-पलट दीं। बनिए को उस पर क्रोध आया। उसने उसके एक तीर मारा। तीर लड़के की जाँघ में घुस गया। उस समय सना-उल्ला नामक लखनऊ का एक काश्मीरी सौदागर बौंडी में था। वह राजा हरदत्तसिंह के यहाँ शाल बेचने आया था। राजा के भाई की शादी थी। उसके पास कई नौकर थे। उनमें से जानू नामक एक कम उम्र का ख़िदमतगार था और रमज़ानख़ाँ नामक एक बुड्ढा सिपाही था। जानू को उस लड़के पर दया आई। उसने उसकी जाँघ से तीर निकाला; घाव पर मरहमपट्टी लगाई और पास ही आम के पेड़ के नीचे उसके लिये बिस्तरा कर दिया। वहीं पेड़ के पास वह भी रहता था। परंतु छोलदारी के खूँटे से उसको उसे बाँधना पड़ा। उस समय वह लड़का कच्चे मांस के सिवा और कुछ न खाता था। इस आदत को छुड़ाने के लिये, अपने मालिक का हुक्म लेकर, जानू उसे दाल-भात देने लगा। पर उसने दाल-भात खाने से इनकार किया। कई दिनों तक वह बिना कुछ खाए भूखा ही पड़ा रहा। पर जानू ने धैर्य न छोड़ा। धीरे-धीरे उसे बाटियाँ (कंडों की आग पर पकाई हुई गोल-गोल रोटियाँ) खाने पर उसने राज़ी किया। ऐसा करने में उसे कोई

पंद्रह दिन लगे, उसके बदन से बहुत ही बुरी बदबू निकलती थी। उसे दूर करने के लिये जानू उसके बदन पर पानी में भिगोकर खली मलता रहा, कई महीने तक उसने खली मली, पर बदबू नहीं गई। दाल-भात और रोटी भी वह खाने लगा। इससे भी बदबू दूर नहीं हुई। उसकी कुहनियों और घुटनों का चमड़ा बहुत सख़्त हो गया था। इससे यह सिद्ध था कि बहुत दिनों तक वह हाथ-पैर के बल चला था। आम के नीचे बाँधे जाने के बाद कोई डेढ़ महीने तक उसके बदन के जोड़ों पर तेल मला गया। तब कहीं वह आदमियों की तरह खड़ा होकर चलने लगा। उसके मुँह से कभी कोई सार्थक शब्द नहीं निकला। हाँ, कभी-कभी वह "अबूदिया" ज़रूर कहता था। "अबूदिया" उस काश्मीरी भाँड़ की छोटी लड़की थी। वह इस लड़के को बहुत चाहती थी। इसी से लड़का भी उससे कुछ मुहब्बत रखता था। चार महीने बाद वह इशारे समझने लगा और इशारों के अनुसार काम भी करने लगा। जानू ने उसे चिलम भरना सिखलाया। चिलम भरकर और हुक़्क़ा तैयार करके वह जानू के पास लाने लगा और जिसे वह कहे, उसे देने भी लगा।

एक रात को लड़का पेड़ के नीचे लेटा था कि जानू ने देखा, दो भेड़िए उसके पास आए। वे चुपचाप आए और उसके बदन को सूँघने लगे। फिर उन्होंने उसे अपने मुँह से छुआ। तब वह उठ बैठा। वह उन्हें देखकर ज़रा भी नहीं डरा। उलटा उनके सिर पर उसने अपने हाथ रख दिए और वे उससे खेलने लगे। भेड़िए उसके चारों तरफ़ उछलने-कूदने लगे और वह उन पर घास-फूस और पत्तियाँ फेंकने लगा। जानू ने उन भेड़ियों को भगाने की बहुत कोशिश की; पर वे वहाँ से न हटे। इससे वह बहुत डर गया और तोपख़ाने के संतरी मीर अकबरअली को उसने आवाज़

दी। उसने कहा—"भेड़िए लड़के को खाना चाहते हैं।" अकबर-अली ने जवाब दिया—"लड़के को छोड़कर तुम भाग आओ, नहीं तो तुम्हें भी भेड़िए खा जायँगे।" परंतु जब जानू ने देखा कि भेड़िए लड़के के साथ आनंद से खेल रहे हैं, तब उसका डर छूट गया और वह चुपचाप अपनी जगह पर पड़ा रहा। धीरे-धीरे उसने उन्हें भगाने की फिर कोशिश की। वे कुछ दूर तो हट गए, पर फिर लड़के के पास आकर उससे खेलने लगे। आख़िर को उसने उन भेड़ियों को, किसी तरह, वहाँ से भगा ही दिया। दूसरी रात को तीन भेड़िए आए और वे सब-के-सब उस लड़के से खेलते रहे। दो-तीन दिन बाद, एक रात को चार भेड़िए आए, पर चार से अधिक कभी नहीं आए। इस तरह चार-पाँच दफ़े भेड़िए आए; इससे जानू का डर छूट गया। जानू का ख़याल है कि पहली रात को जो दो भेड़िए आए थे, वे बहुत करके वही बच्चे थे, जिनके साथ वह लड़का पहले-पहल पकड़ा गया था। लड़के के बदन से भेड़ियों ही के बदन की जैसी दुर्गंध निकलती थी। इसी से, भेड़िया समझकर वे उसे नहीं उठा ले गए। जब वह लड़का उन भेड़ियों के सिर पर अपना हाथ रखता था, तब वे उसके मुँह को अपनी जीभ से चाटते थे।

कुछ दिन बाद सनाउल्ला लखनऊ को लौटा। उसने जानू को धमकाया कि यदि वह उस लड़के को न छोड़ देगा, तो वह उसे नौकरी से बरख़ास्त कर देगा। पर जानू ने उसे न छोड़ा। सनाउल्ला को भी दया आई। इससे उसने उसे रहने दिया। जानू ने लड़के के सिर पर कपड़ों की एक गठरी रख दी और उसकी बाँह में एक रस्सी को बाँध दी। उसी रस्सी को पकड़कर वह उसे ले चला। रास्ते में जहाँ कहीं जंगल मिलता, लड़का गठरी को फेंक कर भाग जाने की कोशिश करता। परंतु मारने पर वह हाथ जोड़ता और

गठरी को उठाकर फिर चलने लगता। पर मार-पीट को बहुत जल्द भूल जाता और जहाँ कहीं वह जंगल देखता, वहाँ वह फिर भागने की कोशिश करता। धीरे-धीरे वह हिल गया और भागना बंद कर दिया। लखनऊ पहुँचने पर, तीन महीने बाद, दो-एक दिन के लिये अपने मालिक के हुक्म से जानू कहीं बाहर किसी काम से गया। वह बाहर ही था कि लड़का कहीं भाग गया! तब से उसका कुछ भी पता न चला। लड़के के चले जाने के दो महीने बाद, एक दिन एक औरत सनाउल्ला के पास आई। वह ज़ात की कोली थी। राजा हरदत्तसिंह के एक रिश्तेदार ने उसे एक चिट्ठी सनाउल्ला के नाम दी थी। उसी को लेकर वह आई थी। वह चुरियर-कोटरा की रहनेवाली थी। यह गाँव राजा हरदत्तसिंह की ज़मींदारी में है। उससे मालूम हुआ कि उसके एक लड़का चार वर्ष का था। कोई छः वर्ष हुए, उसे एक भेड़िया उठा ले गया था। उसने कहा कि उसके लड़के के बदन पर दो निशान थे। एक छाती पर था; वह फोड़े का निशान था। दूसरा निशान माथे पर था; वह न मालूम किसका था। जानू के पास जो लड़का था उसके बदन पर भी ठीक-ठीक यही निशान थे। इससे निःसंदेह वह लड़का इसी औरत का था। लखनऊ में यह औरत सनाउल्ला और जानू के पास कोई चार महीने तक रही। परंतु जब लड़के का कोई पता न चला, तब नाउम्मेद होकर वह अपने घर लौट गई। सनाउल्ला, जानू और रमज़ानख़ाँ अभी तक लखनऊ में हैं। उन्होंने मुझसे यह घटना अपने मुँह से बयान की है। अतएव इसके सच होने में कोई संदेह नहीं। वह लड़का कोई पाँच महीने जानू के पास था और कोई चार महीने पहले वह पकड़ा गया था। इससे अनुमान होता है कि छः-सात वर्ष वह भेड़ियों के साथ रहा होगा। जिस भेड़िए ने उसे पाला होगा, उसने इतने समय में, कई दफ़े

बच्चे दिए होंगे। जानू का कथन है कि पहलेपहल उसने उस लड़के की कमर में कमरबंद बाँधना चाहा। पर क्रोध में आकर वह कमरबंद को अकसर तोड़ डालता था। दो महीने में वह कमरबंद बाँधने लगा। तब जानू ने उसे पायजामा और अँगरखा पहनना सिखलाया। यह उसे बहुत ही नागवार हुआ। बहुत कुछ धमकाने और मारने-पीटने पर, बड़ी मुश्किलों से, उसने उन्हें पहना। परंतु जब वह अपने को अकेला पाता, तब कपड़े उतारकर फेंक देता। यदि उसे कोई नंगा देखता, तो वह डरकर फिर कपड़े पहन लेता। जब उसका बदन खुल जाता, तब जानवरों की तरह वह अपने बदन को पेड़ या दीवार वग़ैरह से रगड़ने लगता। रगड़ने में उसके कपड़े अकसर फट जाते। उसकी यह आदत अंत तक नहीं छूटी।

राजा हरदत्तसिंह इस समय (२८ जनवरी १८५१ को) लखनऊ में हैं। वे एक काम से यहाँ आए हैं। वे कहते हैं कि वह लड़का तीन महीने तक उनके यहाँ था। उसकी उम्र कोई बारह वर्ष की होगी। कच्चा मांस उसे बहुत ही पसंद था। वह उसे बड़ी खुशी से खाता था। रोटी वग़ैरह वह छूता तक न था। वह हाथ-पैर के बल, बंदर की तरह चलता था। बहुत धमकाने से वह खड़ा होकर आदमी की तरह चलता था। पर उसे अच्छी तरह चलना न आता था। इशारे वह समझ जाता था। पर न वह बोल सकता था और न किसी की बोली समझता था। किसी को काट खाने की वह बहुत कम कोशिश करता था।

मैंने बहुत कुछ जाँच की, पर भेड़ियों की माँद में किसी बड़े आदमी के पाए जाने की घटना का मुझे कोई सबूत नहीं मिला। लखनऊ में इस समय एक बुड्ढा आदमी है। जब वह लड़का था तब, तराई में, एक फ़क़ीर की झोंपड़ी के पास, उसके मरने

के बाद, वह मिला था। लोग कहते हैं कि फ़क़ीर ने इस लड़के को भेड़ियों से छीना था। कोई चालीस वर्ष हुए, वह एक सवार को मिला था। सवार उसे बादशाह के पास लाया। तब से, बादशाह की कृपा से, वह, लखनऊ में, बड़े आराम से रहता है। एक दिन मैंने उसे बुलाया और उससे बातचीत की। सूरत-शकल से वह थारू-जाति का जान पड़ता है। इसी जाति के लोग तराई के जंगलों में अधिक रहते हैं। वह बहुत सीधा-सादा है। बोलता भी वह बहुत कम है। और जो कुछ बोलता है; साफ़-साफ़ नहीं बोल सकता। आदमियों के बीच में बैठना उसे पसंद नहीं; वह एकांत में अकेले रहना चाहता है। जो लोग उससे अधिक पूछ-पाछ करके तंग करते हैं, उनसे वह और भी घबराता है। मैंने उससे पूछा कि भेड़ियों के साथ रहने का तुम्हें कुछ भी स्मरण है। उसने कहा—"फ़क़ीर के बहुत दिन पहले ही भेड़िए मर गए।" जान पड़ता था कि इसके सिवा उसे और कुछ याद नहीं। उसकी कुहनियों और घुटनों पर कोई निशान भी नहीं, जिससे भेड़ियों के साथ उसका रहना साबित हो। इसमें संदेह नहीं कि वह जंगल में मिला था; पर मुझे इस बात पर विश्वास नहीं कि वह भेड़ियों के साथ रहा है।

आठ-दस वर्ष की उम्र तक जो लड़का भेड़ियों के साथ रहेगा, उसमें आदमी की-सी समझ कभी न आवेगी। जो कुछ मैंने देखा और सुना है उससे मैं कह सकता हूँ कि इस तरह का लड़का कभी आदमी की तरह सज्ञान न होगा। मैंने कभी नहीं सुना कि कोई बड़ा आदमी किसी भेड़िए की माँद में पाया गया हो। जितने मिले हैं, लड़के ही मिले हैं। इसका कारण यह है कि बहुत दिनों तक कच्चा मांस खाते-खाते या तो वे खुद ही मर जाते हैं या भेड़िए अथवा और हिंस्र पशु उन्हें, बड़े होने के पहले ही, मार डालते

हैं। क्योंकि वे भेड़ियों की बराबर नहीं दौड़ सकते। इससे वे हिंस्र जीवों से अपनी रक्षा नहीं कर सकते। अथवा जो भेड़िए उनको पालते हैं, वे या तो कुछ दिनों में खुद ही मर जाते हैं या मार डाले जाते हैं। इस कारण उनके पाले हुए लड़के अकेले रह जाते हैं और दूसरे जीव उन्हें मार खाते हैं। शेर जब किसी जानवर को मारता है, तब एक ही दफ़े में वह उसे नहीं खा जाता। वह लाश के पास, कुछ दूर पर, कहीं छिपा बैठा रहता है और जब भूख लगती है, आकर उसे खाता है। यदि ऐसी लाश को भेड़ियों का पाला हुआ कोई लड़का देख ले, तो ज़रूर ही वह उसे खाने लगे। इस दशा में शेर ज़रूर ही उस पर हमला करेगा और उसे मारकर खा जायगा। इन्हीं कारणों से भेड़ियों के पाले हुए जवान आदमियों के पाए जाने का पता नहीं लगता। पर भेड़िए लड़कों को पालते क्यों हैं? क्यों नहीं पकड़ने के साथ ही मारकर उन्हें खा जाते? क्या दयार्द्र होकर वे उन्हें पालते हैं अथवा अपना बच्चा समझकर? इस बात का विचार स्लीमन साहब ने नहीं किया।

[सितंबर १९०६

२—वानराध्याय

गोरिल्ला आदि बंदरों का शील-स्वभाव

योरप के विद्वान् बंदरों के गुण और स्वभाव की बहुत दिनों से परीक्षा कर रहे हैं। उन्होंने इस विषय की कितनी ही बातों का खूब पता लगाया है। वे सब ; समय-समय पर, पुस्तकों और समाचार-पत्रों में प्रकाशित हो चुकी हैं । कुछ वर्षों से अध्यापक स्कोलस्की नाम के एक रूसी विद्वान् स्टेलिजन नगर की प्रसिद्ध पशु-शाला में यह जानने के लिये बंदरों की जाँच कर रहे थे कि उनमें मानवी गुण और स्वभाव कहाँ तक पाया जाता है। हाल ही में अध्यापक महाशय ने अपनी परीक्षा का फल प्रकाशित किया है। उसमें उन्होंने इस बात पर बड़ा ज़ोर दिया है कि मनुष्य की तरह बंदरों में भी जीवात्मा होता है। हम लोग तो अनंत काल से इस बात को मानते हैं कि मनुष्यों की तरह सभी प्राणियों में जीवात्मा होता है । परंतु ईसाई लोग इसे नहीं मानते। हर्ष की बात है कि धीरे-धीरे उनका अज्ञानांधकार दूर होता जाता है। स्कोलस्की साहब के कथन का सारांश हम उन्हीं के शब्दों में यहाँ पर लिखते हैं।

मैंने बहुत अर्से तक गोरिल्ला, चिंपैंज़ी और ओरंग-ओटंग जाति के बड़े-बड़े बंदरों की गहरी जाँच की। इससे मुझे विश्वास हुआ

है कि इन जानवरों में भी वैसा ही जीवात्मा होता है, जैसा कि मनुष्यों में। जीवात्मा से मेरा तात्पर्य उस मानसिक जीवन से है, जिसमें आत्मज्ञान, विवेक, तर्कणा-शक्ति, बुद्धि और उच्च भाव मौजूद हों।

पहले गोरिल्लों का हाल सुनिए। गत तीन वर्षों में, मैंने आठ गोरिल्लों का निरीक्षण किया। वे छः से लेकर आठ वर्ष की उम्र तक के थे। इनमें से एक की जाँच मैंने विशेष ध्यान-पूर्वक की।

शुरू ही से यह मालूम होने लगा कि पशुशाला में इन बंदरों का मन नहीं लगता। वे शरमाते थे और आदमियों से मिलना-जुलना पसंद न करते थे। उनके चेहरे से दुख और औदास्य का भाव सदा टपका करता था। वे चुपचाप एक कोने में बैठे रहते थे और हमेशा मुँह लटकाए रहते थे। उन्हें देखने से यह साफ़ जान पड़ता था कि वे अपनी इस पराधीनता को नहीं सह सकते।

बेचारे गोरिल्ले क़ैद में बहुत दिन तक नहीं जीते। पकड़े जाने के बाद ही उनकी आवाज़ कमज़ोर हो जाती है; वे अपने हाथों से अपनी आँखें छिपा लेते हैं। आदमियों को देखना पसंद नहीं करते; कुछ दिन के बाद मर जाते हैं। उनकी लाश की परीक्षा करने से यह मालूम हुआ है कि वे किसी विशेष रोग से नहीं मरते, किंतु दुःखाधिक्य के कारण प्राण त्याग देते हैं। क़ैद में उनकी जीवनी शक्ति नष्ट हो जाती है। इसीलिये वे मर जाते हैं। इन बातों से सिद्ध है कि गोरिल्ला निरा जंगली जानवर नहीं; किंतु उसमें मनुष्यों की तरह आत्मा भी होता है। क्योंकि सब जानवरों में मनुष्य ही ऐसा प्राणी है, जिसे क़ैद में सबसे अधिक दुःख होता है।

विज्ञानियों का सिद्धांत है कि मनुष्यों और बंदरों में घनिष्ठ

संबंध है और बंदर ही मनुष्यों के पूर्वज थे। कुछ दिन हुए, जावा-द्वीप में एक ऐसे बंदर का ढाँचा मिला था, जिसका आकार मनुष्य का-सा था और जो सीधा खड़ा होकर चलता था। इससे भी इस सिद्धांत की पुष्टि होती है। यदि मनुष्यों और बंदरों में ऐसा घनिष्ठ संबंध है, तो मनुष्यों की तरह बंदरों में भी, अवश्य ही जीवात्मा होगा। जो गोरिल्ले जंगलों में रहते हैं, उनमें मानवी गुण और स्वभाव विशेष रूप से पाया जाता है। वे अन्य जानवरों की तरह झुंड बाँधकर नहीं, किंतु अपना-अपना परिवार अलग बनाकर रहते हैं। एक-एक गोरिल्ले के कई-कई स्त्रियाँ होती हैं। नर गोरिल्ला अपनी स्त्रियों और बच्चों को केवल खाना ही नहीं पहुँचाता; किंतु दुश्मनों से उनकी रक्षा भी करता है।

मैं अपने आठ गोरिल्लों में से एक को पिंजड़े में न रख कर एक बाड़े में रखता हूँ। वह बहुत हिल गया है। उसमें परिहास करने और समझने की अच्छी शक्ति है। आसपासवालों से वह खूब दिल्लगी किया करता है। वह अजीब तरह का मुँह बनाकर बड़े मज़े से हँसता है। यह गोरिल्ला एक हबशी से बहुत अधिक हिला है। खेलने में उसका मन बहुत लगता है। मेहरबानी के बरताव को वह अच्छी तरह समझता है। वह चित होकर या करवट सोता है। और अपनी एक बाँह सिर के नीचे रख लेता है। हम लोग भी इसी तरह सोते हैं। एक ही सी पोशाक पहने हुए सैकड़ों आदमियों के बीच से वह अपने मालिक को पहचान लेता है। पहचानने की ऐसी अद्भुत शक्ति मनुष्यों के सिवा अन्य जानवरों में मिलनी मुश्किल है।

एक दिन मुझे मालूम हुआ कि गोरिल्ला हँसने या दिल्लगी करने पर क्रोध भी प्रकट करता है। गोरिल्ले के इस मानसिक गुण को देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मेरी समझ में इससे यह स्पष्ट

प्रतीत होता है कि उसमें जीवात्मा है। क्योंकि जिस जानवर में आत्मसम्मान के उच्च भाव मौजूद न होंगे, वह न तो दिल्लगी को समझ ही सकेगा और न उससे बुरा ही मान सकेगा।

जब कभी मैं अपने प्यारे गोरिल्ले की हँसी उड़ाता हूँ, तब वह बहुत नाराज़ होता है। अपना मुँह छिपा लेता है और फिर तीन-चार दिन तक मेरे साथ नहीं खेलता। कभी-कभी वह अपनी तीव्र स्मरण-शक्ति का भी परिचय देता है।

छककर भोजन करने के बाद मेरा गोरिल्ला अपने दोनों हाथ पेट पर फेरता है, आनंद और संतोष प्रकट करता है और बाद में जाकर सो जाता है। पेट-भर भोजन करने के बाद क्या अन्य जानवर भी ऐसा ही संतोष प्रकट करते हैं ? नहीं, कभी नहीं। यह बात केवल मनुष्यों ही में पाई जाती है। मेरा गोरिल्ला स्वादिष्ट पदार्थ बहुत पसंद करता है; उन्हें देखते ही वह प्रसन्न होता है। यह बात भी उनके मानुषिक गुण-विशिष्ट होने का एक प्रमाण है।

सब लोग जानते हैं कि गोरिल्ले का अस्थि-पंजर मनुष्य के अस्थि-पंजर ही की तरह होता है। अंतर केवल एक बात में होता है। वह यह कि गोरिल्ले की हड्डियाँ भारी होती हैं। पर हाथ-पैर आदि सभी अवयव मनुष्य के जैसे होते हैं।

अन्य बंदरों की अपेक्षा गोरिल्ला अधिक समझदार होता है। अपने परिवार का पालन-पोषण वह बड़े अच्छे ढंग से करता है। गोरिल्लों के बच्चे के गुण और स्वभाव मनुष्य से बहुत मिलते-जुलते हैं। बचपन में उनमें जंगलीपन नहीं रहता। मेरा प्यारा गोरिल्ला बात-बात में बिगड़ उठता है; परंतु मनाने से मान भी जाता है। वह जानवरों की तरह खाने पर टूट नहीं पड़ता, किंतु धीरे-धीरे खाता है। मनुष्यों की तरह पहले वह भोज्य पदार्थों को उँगलियों से उठाता है; फिर उन्हें यह देखने के लिये सूँघता

है कि वे खाने योग्य हैं या नहीं। इसके बाद उन्हें धीरे-धीरे काटकर खाता है।

मेरे गोरिल्ले को यह जानने की बड़ी इच्छा रहती है कि कहाँ क्या हो रहा है। वह प्रत्येक बात को ध्यान से सुनता और समझने की कोशिश करता है। वह विचारशील भी है। विना सोचे-विचारे वह किसी काम को करता नहीं जान पड़ता। उसे अपने रखवालों पर बहुत विश्वास है। जो कुछ वे लाते हैं, उसे विना सूँघे वह खा लेता है। एक दिन रखवाले भूल से उसके लिये खट्टा दूध ले आए। बस, उस दिन से वह दूध को सूँघे और चखे विना कभी नहीं पीता।

जब वह पहलेपहल पशुशाला में लाया गया था, तब तेज़ धूप में छोड़ दिया गया था। बस, धूप की तेज़ी ज्यों ही असह्य मालूम होने लगी, त्यों ही वह मनुष्यों की तरह उठकर साए में जा बैठा। उस दिन से उसकी हर एक हरकत जाँची जाने लगी। इससे मालूम हुआ कि जो काम वह करना चाहता है, उसे पहले अच्छी तरह से सोच-समझ लेता है।

गोरिल्ले की अपेक्षा चिंपैंज़ी में मानसिक गुण और स्वभाव कम विकसित होते हैं। चिंपैंज़ी को जब आदमियों के जैसे कपड़े पहनाए जाते हैं, तब वह बड़ी सफ़ाई से रहने लगता है और उसमें कुछ गंभीरता आ जाती है। परंतु जब नंगा रहता है, तब अन्य जानवरों की तरह मैलेपन से रहता है। एक दिन मैंने एक चिंपैंज़ी को बहुत बढ़िया पोशाक पहनाई। उसे पहनते ही वह गंभीर-भाव से खड़ा हो गया। मालूम होता था कि आत्मसम्मान की समझ उसमें आ गई है। बस, उस समय से, वह सफ़ाई से रहने और भले आदमियों का जैसा बरताव करने लगा। इस प्रकार उसने अपने मानसिक गुण और स्वभाव का अच्छा परिचय

दिया। मनुष्य का यह स्वभाव होता है कि जब वह अच्छे कपड़े पहनता है, तब सफ़ाई से रहता है और अपने आसपास के लोगों को अपना बड़प्पन दिखाता है।

चिंपैंज़ी गोरिल्ले की जाति का जानवर है। चिंपैंज़ी के जंगलों में रहने का ढंग बिलकुल जुदा होता है। गोरिल्ले की तरह वह परिवार के साथ नहीं रहता, किंतु अपने सजातियों के झुंड के साथ रहता है। गोरिल्ला उदास, शांत, गंभीर और विचार-शील होता है, पर चिंपैंज़ी चंचल, चिलबिल्ला, लापरवाह और लड़ाकू प्रकृति का होता है। वह सदा गड़बड़ मचाया करता है।

सज़ा पाने पर गोरिल्ला बहुत बुरा मानता है और उसे बहुत दिनों तक याद रखता है। पर चिंपैंज़ी सज़ा की परवा नहीं करता और उसे बहुत जल्द भूल जाता है। चिंपैंज़ी हरएक के साथ शीघ्र हिल जाता है। पर गोरिल्ला बहुत थोड़े लोगों से और बहुत दिनों में हिलता है। परंतु एक बार जिससे हिल जाता है, उसे फिर कभी नहीं भूलता।

चिंपैंज़ियों के बच्चे अपने रखवालों को बहुत चाहते हैं। पिंजड़ों से निकलते ही वे दीवारों पर चढ़ जाते हैं और खूब उछल-कूद मचाते हैं। हरएक चिंपैंज़ी का स्वभाव और चेहरा एक दूसरे से नहीं मिलता-जुलता ; इसलिये उनके पहचानने में गड़बड़ नहीं होती। उनमें क्रोध, प्रसन्नता, थकावट, अनिच्छा, भय, ईर्षा, द्वेष, औदास्य, दुःखानुभव आदि सभी मनोभाव पाए जाते हैं।

चिंपैंज़ी और औरंग-ओटंग दोनों जाति के बंदर पानी मिली हुई सुर्ख़ शराब के बड़े शौक़ीन होते हैं। यह उनके लिये लाभ-दायक भी होती है। जो कुछ उन्हें सिखाया जाता है, उसे वे सहज ही में सीख लेते हैं। मेज़ के पास बैठकर क़ायदे के साथ

भोजन करना उन्हें सिखलाया गया था। मार्टिन, जेकब और रोज़ नाम के तीन बंदर नित्य ठीक समय पर खाने की मेज़ के पास आकर अपनी-अपनी कुर्सियों पर, भले आदमियों की तरह, बैठ जाते थे और चुपचाप खाना आने का इंतिज़ार किया करते थे। जब मार्टिन अपने इच्छानुसार दूध पी चुकता, तब रक्षक उससे कहता—"क्या तुम और दूध अब न पिओगे? यदि नहीं, तो उसे रोज़ को दे दो।" बस, मार्टिन दूध की बोतल को तुरंत रोज़ की ओर सरका देता।

पिछले पैरों के बल खड़े होकर मनुष्यों की तरह चलना सभी जाति के बंदर पसंद करते हैं। इससे मालूम होता है कि उनमें मानवी स्वभाव के मूल तत्त्व मौजूद हैं। जंगलों में चारों पैरों के बल वे इसलिये चलते हैं कि वहाँ उन्हें ऊँची-नीची ज़मीन पर चलना पड़ता है। पर चौरस जगह पाने पर, वे वहाँ खड़े होकर चलते हैं। मेरे दो चिंपैंज़ी और तीन औरंग-ओटंग सदा खड़े होकर चलते थे और इसी तरह मेरे साथ नित्य शाम को टहलने जाते थे।

इसमें कोई संदेह नहीं कि इन बंदरों में स्मरण-शक्ति भी होती है। इस बात के कितने ही प्रमाण पाए गए हैं। एक बार पशुशाला का मालिक दो सप्ताह के लिये इँगलैंड गया। वहाँ से लौटने पर ज्यों ही चिंपैंज़ी मार्टिन ने उसे देखा, त्यों ही प्रसन्न होकर "ऊ० ऊ० ऊ० ऊ० ऊ०" करने लगा। जब बंदर भयभीत होता है, तब वह इस ध्वनि को ठहर-ठहरकर उच्च स्वर से उच्चारण करता है और हाथ-पैर पटककर उछलने लगता है। जब वह चिल्लाता है, तब दोनों हाथ हिलाने लगता है। अफ़रीका के जंगली लोग भी चिल्लाते समय ऐसा ही करते हैं। अन्य प्रकार के बंदरों की अपेक्षा औरंग-ओटंग बंदरों की स्मरण-शक्ति अधिक तीव्र होती है। दो

औरंगों ने अपने पुराने मालिक को सात वर्ष के बाद देखते ही तुरंत पहचान लिया था।

औरंग ओटंग की सूरत-शक्ल और स्वभाव न तो गोरिल्लों ही से मिलता है और न चिंपैंज़ी ही से। वह बड़े ही सीधे-सादे मिज़ाज का होता है। गोरिल्ले की तरह न तो स्वार्थी, न बिगड़ैल ही होता है और न चिंपैंज़ी की तरह चंचल और लापरवा। पुचकारे जाने पर वह हँसता है और अपने रखवालों से शीघ्र ही हिल जाता है। परंतु हरएक आदमी से मिलना वह पसंद नहीं करता। चिंपैंज़ी से वह अधिक बुद्धिमान् होता है। गोरिल्ले की तरह क़ैद में वह सदा उदास नहीं रहता। परंतु वह ऐसा आलसी होता है कि चिंपैंज़ी तक उसे खेलने के लिये नहीं राज़ी कर सकता। जो कुछ वह करता है, उसे अच्छी तरह सोच-विचार कर करता है।

[जनवरी १९०७

बंदरों का पुल

बंदरों का डीलडौल मनुष्य के डीलडौल से बहुत मिलता है। एक विलायती विद्वान् का तो यह मत है कि छोटे-छोटे जीवों से अधिक बड़े होते-होते, क्रम-क्रम से बंदर उत्पन्न हुए हैं और बंदरों के अनंतर मनुष्य उत्पन्न हुए हैं। अर्थात् बंदर हमारे पूर्व-पुरुष हुए। हाथी और घोड़े इत्यादि पशुओं की बुद्धिमानी की कथाएँ बहुधा सुनने में आती हैं; परंतु बुद्धि में बंदरों की बराबरी और कोई पशु नहीं कर सकते। बंदर कभी-कभी बड़ी ही बुद्धिमानी के काम करते हैं। बंदरों की तीक्ष्ण बुद्धि का एक उदाहरण सुनिए—एक नदी पार करने के लिये इन्होंने अपने शरीर

का एक ऐसा पुल बाँध दिया, जिसे देखकर देखनेवाले की बुद्धि चक्कर में आ जाय। इस पुल का वृत्तांत इस प्रकार है—

बंदरों को तैरना नहीं आता; वे पानी से बहुत डरते हैं। परंतु जब कभी उनको कोई छोटी-मोटी नदी पार करना पड़ता है। तब वे दस-पाँच मिलकर अपने शरीर का पुल बनाकर उसे पार कर जाते हैं। इस प्रकार का पुल एक मनुष्य ने अपनी आँखों देखा है और उसका चित्र भी उनसे प्रकाशित किया है। वह लिखता है कि एक बार कोई चार-पाँच सौ बंदरों का झुंड एक नदी के किनारे आ पहुँचा। वह नदी इतनी गहरी थी और इतने वेग से बह रही थी कि उसमें प्रवेश करके पार जाने का साहस उन बंदरों को नहीं हुआ। वह इतनी छोटी भी न थी कि उसे वे कूद जाते। उन बंदरों में एक बहुत बड़ा और बुड्ढा बंदर था। बंदरों की उस सेना का वह सेनापति-सा था। उसके साथ और भी दस-पाँच बड़े-बड़े बंदर थे। उनमें से कोई कर्नल, कोई कप्तान, कोई सूबेदार, कोई जमादार, कोई इंजिनियर इत्यादि का-सा काम करता था। सेनापति ने नदी को वेग से बहती देख, उतरने का प्रबंध करने के लिये, अपने साथी उन बड़े-बड़े बंदरों को नदी के किनारे-किनारे दूर-दूर तक भेज दिया। थोड़ी ही देर में इनमें से एक बंदर दौड़ता हुआ आया और सेनापति से कुछ कहकर इशारा किया। तत्काल ही सेनापति वहाँ से चल दिया और उसके पीछे-पीछे बंदरों की सेना भी चली। थोड़ी ही दूर चलने पर वे एक बहुत ऊँचे पेड़ के नीचे पहुँच गए। वह पेड़ नदी के ठीक किनारे पर था और उसी के सामने दूसरे किनारे पर एक और पेड़ उतना ही बड़ा था। वहाँ सेनापति बंदर ठहर गया और जो बंदर उसे बुलाने गया था, वह झट उस पेड़ की सबसे ऊँची डाल पर जाकर उसे हिलाने लगा। हिलाकर वह नीचे उतर आया। उसने इंजिनियर का-सा काम

किया और उस डाल को हिलाकर यह बतलाया कि वहीं से पुल बनाना चाहिए।

उस सेना में सबसे बलवान् और लंबी पूँछवाले कोई १५ बंदर चुने गए। उनमें से एक बंदर उस पेड़ पर चढ़ गया; और चढ़कर पहले बंदर की दिखलाई हुई डाल में तीन-चार बार दृढ़ता से अपनी पूँछ लपेटकर मुँह नीचे करके लटकने लगा। तब दूसरा बंदर ऊपर गया और पहले बंदर के गले में अपनी पूँछ लपेटकर वह भी लटकने लगा। तीसरे बंदर ने उन दोनों के ऊपर से आकर दूसरे के गले में अपनी पूँछ लपेटी और लपेटकर वह भी लटक गया। इस प्रकार कई चौदह-पंद्रह बंदर लटकते गए; यहाँ तक कि सबसे नीचे के बंदर के हाथ भूमि तक पहुँच गए। तब नीचेवाले बंदर ने उस श्रृंखला को हिलाना प्रारंभ किया और हाथों को धीरे-धीरे पृथ्वी पर लगाते हुए उसने उसकी गति को बढ़ाया। उस श्रृंखला में लगे हुए दूसरे बंदरों ने भी इस काम में उसकी सहायता की। थोड़ी ही देर में उसकी गति इतनी बढ़ी कि नीचेवाला बंदर नदी के दूसरे किनारे के पेड़ की डालियों तक पहुँच जाने लगा। एक बार एक डाल के वह इतना निकट पहुँच गया कि उसे उसने झट पकड़ लिया। बस, पकड़ने की देरी थी कि वह श्रृंखला नदी के ऊपर से होती हुई दोनों पेड़ों के बीच में थम गई और एक सजीव पुल तैयार हो गया। इस पुल के ऊपर से वे चार-पाँच सौ बंदर सहज में शीघ्र ही पार हो गए।

जब सब बंदर नदी के पार उतर गए, तब दूसरे किनारे के पेड़ के ऊपर पाँच-सात बंदरों ने मिलकर एक और श्रृंखला बनाई और उसे पहली श्रृंखला से जोड़ दिया। जोड़कर उसे उन्होंने पेड़ के और ऊपर खींच लिया, यहाँ तक कि उसके दोनों छोर बराबर-बराबर ऊँचाई पर पहुँच गए। इतना हो चुकने पर सेनापति

बंदर ने एक ऐसी किलकारी मारी जिसे सुनते ही नदी के पहले किनारे के पेड़ को पकड़नेवाले बंदर ने उसे छोड़ दिया और वह श्रृंखला एक झटके के साथ नदी के दूसरे किनारे पर आकर लटकने लगी। ज्यों ही वह थँभी, त्यों ही नीचे का बंदर औरों के ऊपर होते हुए पेड़ पर निकल गया। उसके पीछे दूसरा गया; फिर तीसरा; फिर चौथा। इसी प्रकार वे सारे बंदर पेड़ पर चले गए और वह सजीव पुल पल-भर में टूट गया।

[मार्च १९०३

३-जलचराध्याय

राक्षस-मत्स्य

(१)

रत्नाकर-समुद्र—जिस प्रकार अनेक रत्नों का घर है, उसी प्रकार वह अनेक अद्भुत-अद्भुत जीवों का भी घर है। ह्वेल के समान भयंकर और विशाल—शरीरधारी जीव भी उसमें पाए जाते हैं और मोती के समान मनोहर रत्न भी, उसमें पाए जाते हैं। समुद्र में अनंत जीव वास करते हैं। कोई-कोई उनमें से इतने आश्चर्य-जनक और डरावने आकार के होते हैं कि केवल उनका चित्र ही देखकर डर लगता है। समुद्र में एक अत्यंत भयानक और कुरूप मछली होती है। उसका शरीर विशेष करके सिर और पैरों ही में विभक्त है; आँख और मुँह को छोड़, उसके और कोई अवयव नहीं दिखलाई देते। नीचे का भाग उसका सिर और हाथी की सूँड़ के समान ऊपर का भाग उसके पैर समझे जाते हैं। पैर गिनती में आठ होते हैं। इन पैरों के बल समुद्र के तल में वह चलती भी है और इनसे वह अपना शिकार भी पकड़ती है। परंतु इन शुंडाकार अवयवों से वह पैरों का काम कम और भुजाओं का कार्य अधिक लेती है। इसी से उसे कर (हाथ) और सिरमयी मछली कहना उचित जान पड़ता है। इसका अँगरेज़ी नाम डेवल-

फ़िश (Devil Fish) है। इसे कोई-कोई असपाद भी कहते हैं। किसी-किसी समुद्र में ये मछलियाँ बहुत ही विशाल आकार धारण करती हैं; वे इतनी बड़ी हो जाती हैं कि उनके मृतक देह तक के पास किसी को जाने का साहस नहीं होता।

इस मछली की भुजाओं में प्राणनाशक शस्त्र होते हैं। ये शस्त्र प्याले के आकार के होते हैं। इनको दूसरे जीवों के शरीर में बल-पूर्वक चिपकाकर, यह मछली, उन्हें दृढ़ता से पकड़ लेती है। इन शस्त्रों से वह पकड़े हुए प्राणी का रुधिर नहीं चूसती; परंतु ये चूषक ही कहलाते हैं। इनकी सहायता से वह शिकार के ऊपर अपनी भुजाएँ इतना निकट चिपका देती है कि फिर वे किसी प्रकार वहाँ से नहीं हिल सकतीं। जब यह मछली किसी दूसरी मछली अथवा किसी दूसरे जीव को पकड़कर उस पर अपनी भुजाएँ जकड़ देती है, तब हज़ार प्रयत्न करने पर भी वह उसे नहीं छोड़ती। ऐसी अवस्था में उसकी भुजाएँ चाहे कोई काट भले ही डाले; परंतु अपने मन से वह उनको कदापि ढीली न करेगी। इसलिये इस मछली की भुजाओं का आलिंगन पाकर फिर कोई जीव किसी प्रकार जीता नहीं बच सकता।

किसी-किसी मछली की दो भुजाएँ औरों की अपेक्षा कुछ अधिक लंबी होती हैं। इसके प्रत्येक चूषक के बीच में एक-एक टेढ़ा काँटा होता है। इन काँटों को चिकने शरीरवाले जीवों की देह में प्रवेश करके वह उन्हें अपनी भुजाओं से दृढ़ता के साथ पकड़ लेती है और तत्काल ही उसे अपने विकराल मुख तक पहुँचा देती है। इसके मुख में तोते की चोंच के आकार की एक कठिन चोंच-सी होती है। पकड़े हुए जीव के ऊपर यदि कछुए का-सा कड़ा छिलका होता है, तो वह उसे इस प्रचंड चोंच से चूर-चूर कर डालती है। इसका जबड़ा मांस में छिपा रहता है; परंतु

शिकार मुख में पड़ते ही वह शीघ्र-शीघ्र खुलने और बंद होने लगता है। चाहे जितना बड़ा जीव हो, इसके विकराल मुख में पड़ते ही, एक पल-भर में वह भीतर चला जाता है। इसकी जिह्वा की एक ओर बहुत-से काँटे होते हैं; वे पीछे को झुके रहते हैं। जब यह कुछ खाने लगती है, तब ये काँटे इसके भक्ष्य के टुकड़ों को भीतर की ओर ले जाने में सहायता देते हैं। इसके दो आँखें होती हैं। उनकी बनावट इतनी बुरी होती है कि उनकी ओर देखा नहीं जाता। इन आँखों से यह मछली एक ही साथ, एक ही दफ़े में, सब ओर देख सकती है।

इस मछली के शरीर में हड्डियाँ नहीं होतीं; एक प्रकार के निर्जीव छिल्के होते हैं और जीवों की हड्डियों के समान उनमें बढ़ने की शक्ति नहीं होती। उनका शरीर से कोई संबंध नहीं रहता। जैसे और मछलियाँ फेफड़े के द्वारा साँस लेती हैं, वैसे ही यह भी लेती है। साँस लेने के लिये इसके शरीर में एक प्रकार की नली होती है; यह नली इसके देह में छिपी रहती है; दिखलाई नहीं देती। मनुष्य के फेफड़े के समान यह नली भी प्रसृत और अकुंचित होती है। इसके दो भाग होते हैं; एक से पानी भीतर जाता है और दूसरे से बाहर निकलता है। कभी-कभी यह मछली श्वासोच्छ्वास लेते समय, बड़े वेग से, पानी को इस नली से बाहर फेंकती है। ऐसा करते समय कभी-कभी वह, तीर के समान, समुद्र के ऊपर दौड़ती है। यही नहीं, कभी-कभी, वह ऊपर की ओर, कुछ देर तक, उड़ भी जाती है और फिर पानी में गिर पड़ती है।

इस मछली की एक जाति बड़ी ही भयंकर होती है। इसे करि-कराकार मछली कहते हैं। इसकी भुजाएँ हाथी की सूँड़ के समान बहुत लंबी और भयानक होती हैं। ये मछलियाँ प्रायः सब समुद्रों

में पाई जाती हैं। वे अकेले नहीं रहतीं। इनके झुंड-के-झुंड समुद्र में दौड़ा करते हैं। परंतु करिकराकार मछली में यह विशेषता है कि उसे एकांत अधिक प्रिय है; उसे औरों का साथ अच्छा नहीं लगता। समुद्र के किसी पर्वतीय किनारे, चट्टानों के बीच में, यह अकेली पड़ी रहती है और अपनी भुजाओं को चारों ओर शिकार पकड़ने के लिये फैलाए रखती है। दोनों प्रकार की ये मछलियाँ बड़ी खादक होती हैं। उनसे समुद्र का कोई भी जीव नहीं बचता। जब वे किनारे पर आ जाती हैं, तब किनारे की मछलियों को खा जाती हैं; कछुओं के लिये एक भी शेष नहीं रहने देतीं। ये अत्यंत निर्दयी भी होती हैं; विना भूख भी अनेक जीवों को मार डालती हैं और मारकर अपनी हिंस्र वृत्ति को तृप्त करती हैं।

जितने जीव हैं, सबके लिये ईश्वर ने शत्रुओं से बचने के उपाय की योजना की है। लंबी भुजाओं के अतिरिक्त, इस मछली को, अपनी रक्षा करने के लिये, ईश्वर ने एक प्रकार का काला रंग दिया है। इस काले रंग की एक थैली इसके शरीर में सर्वदा प्रस्तुत रहती है। जब कोई प्रबल शत्रु इस पर आक्रमण करता है, तब यह इस रंग को पानी पर फेंक-फेंककर उसे इतना काला कर देती है कि उसके भीतर इसे कोई देख ही नहीं सकता। इस काले पानी के भीतर से वह झटपट भाग जाती है और उसके शत्रु अपना-सा मुँह लिए रह जाते हैं। यह काला रंग चित्रकारी में बहुत कम आता है। यह कभी फीका नहीं पड़ता।

यह मछली अनंत अंडे देती है। अंडों के गुच्छे होते हैं और सामुद्रिक लताओं से वे लटका करते हैं। अंडों से सैकड़ों मछलियाँ निकलती हैं और निकलते ही लूट-मार करना आरंभ कर

देती हैं। उनको शिकार करना सिखलाने की आवश्यकता नहीं होती।

[ऑक्टोबर १९०३

---

(२)

इस लेख के पूर्वार्द्ध में इस मछली का नाम डेवेल फ़िश Devil Fish अर्थात् राक्षस-मत्स्य दिया गया है। यह नाम बहुत ही अन्वर्थक है। इसके आँकड़ों की संख्या बहुधा आठ होती है। इससे लोग इसे अष्टपाद भी कहते हैं। एक दफ़े इस मछली की पकड़ में एक ग़ोताख़ोर आ गया। उसका वर्णन "केप टाइम्स" नामक अख़बार और "वाइड-वर्ल्ड मैगेज़ीन" नामक मासिक पत्रिका में प्रकाशित हुआ है। उसी का मतलब हम, यहाँ पर, हिंदी में, देते हैं।

पाठक जानते ही हैं कि दक्षिणी अफ़रीका के केप-कालोनी नामक प्रांत के मालिक हमारे प्रभु अँगरेज़ ही हैं। इस प्रांत की राजधानी केप-टाउन नाम का नगर है। केप-टाउन बहुत बड़ा बंदरगाह है। वहाँ जहाज़ ठहरते हैं। कुछ दिन हुए, एक बड़ा-सा जहाज़ बंदरगाह से टकरा गया। इससे बंदरगाह का कुछ बाँध गिरकर चालीस फ़ुट गहरे समुद्र के भीतर जा पड़ा। अफ़सरों ने बाँध की मरम्मत करनी चाही। परंतु चालीस फ़ुट गहरे पानी से पत्थर की बड़ी-बड़ी शिलाओं को निकालने के लिये आदमियों का मिलना मुश्किल हो गया। इस काम के लिये बड़ी-बड़ी ज़ंजीरें लेकर ग़ोताख़ोरों को पानी के भीतर उतरना पड़ता है। पानी के भीतर-ही-भीतर पत्थरों को वे ज़ंजीर से बाँध देते हैं। तब वे बोझ उठानेवाली कलों से ऊपर खींच लिए जाते हैं।

ग़ोताख़ोर बड़ी मुश्किल से मिले। काम जारी हुआ। इन

ग़ोताख़ोरों में एच्० पामर नाम का भी एक आदमी था। उसे पानी के भीतर काम करने का तजरुबा १९ वर्ष का था। दुनिया में कोई जगह ऐसी नहीं, जहाँ उसने ग़ोताख़ोरी का काम न किया हो। एक दिन यह आदमी कोई २०० मन वज़नी पत्थर के एक बहुत बड़े टुकड़े को पानी के भीतर ज़ंजीर से बाँध रहा था। ग़ोताख़ोरों के लिये एक ख़ास तरह की पोशाक होती है। उसे पहनकर वे पानी के भीतर साँस भी ले सकते हैं और देख भी सकते हैं। पामर भी यही पोशाक पहने था। उस पत्थर को बाँधते समय उसने देखा कि उसके नीचे से एक बहुत ही विलक्षण प्राणी ऊपर को उठ रहा है। पानी बहुत साफ़ था। पामर अपने चारों तरफ़ अच्छी तरह देख सकता था। वह कुछ झुक गया और उस जीव की तरफ़ ध्यान से देखने लगा। वह आश्चर्य से उसकी तरफ़ देख ही रहा था कि यह है क्या चीज़, कि इतने में वह जीव पामर की तरफ़ लपका। लपकने के पहले उसने किसी तरह की कोई ऐसी बात नहीं की, जिससे पामर को यह विदित हो कि वह उस पर हमला करना चाहता है। पलक मारते-मारते एक बे-तरह बड़ा हाथ-सा पत्थर के नीचे से निकला और बड़ी तेज़ी के साथ इधर-उधर हिलकर पामर की टाँग से चिपट गया। उसने पामर की टाँग को इस तरह पकड़ा, जैसे शिकंजा किसी किताब को मज़बूती से पकड़ लेता है। यह देखकर ग़ोताख़ोर बे-तरह डरा और घबराकर कुछ पीछे हट आया। इतने में हाथी की सूँड़ के समान एक और चीज़ पत्थर के नीचे से निकली। वह पामर की भुजा पर पहुँची और उसे इतने ज़ोर से उसने पकड़ा कि बे-काम हो गई।

पामर ने पागल की तरह हाथ-पैर हिलाए और बहुत चाहा कि उन राक्षसी हाथों की पकड़ से वह छूट जाय, पर उसकी

झाड़-झपड़ सब बेकार हुईं। राक्षस-मत्स्य के भुज-दंडों में छोटी-छोटी नलियाँ-सी रहती हैं। वे शिकार का ख़ून चूस लेती हैं। पामर के हाथ जहाँ खुले थे, वहाँ इन रुधिर-शोषक नलियों ने ग़ज़ब ढाना शुरू किया। वहाँ पर उसे बिच्छू के डंक मारे जाने की जैसी पीड़ा होने लगी। उसे मालूम होता था कि कोई बिजली का तार उसके बदन में प्रवेश कर रहा है। जिस भयंकर और क्रूर जीव के वे भुज-दंड थे, वह पत्थर के नीचे अँधेरे में पड़ा था। पामर को विश्वास हो गया कि मैं ज़रूर वहीं खींचकर पहुँचाया जाऊँगा। वह ग़ोताख़ोर बहुत मज़बूत आदमी है। वह बुड्ढा नहीं; नवजवान है। पंद्रह-बीस वर्ष में उसने अनेक तरह की भयानक घटनाओं का सामना किया है। पर थोड़ी देर तक दहशत से वह इतना घबरा गया कि पत्थर के समान वह जहाँ-का-तहाँ खड़ा रह गया। उसके होशो-हवास ठिकाने न रहे। इतने में वह क्रूर प्राणी पत्थर के नीचे से निकलकर कुछ ऊपर आया। उसकी चाल को देखकर पामर के प्राण सूख गए। वह थर-थर काँप उठा। बाहर निकली हुई उसकी बड़ी-बड़ी आँखें और तोते की-सी, पर बहुत बड़ी और बहुत सख़्त, चोंच देखकर पामर ने पहचाना कि यह एक बहुत बड़ा राक्षस-मत्स्य है।

कुछ देर में राक्षस-मत्स्य के दूसरे भुज-दंड भी इधर-उधर तेज़ी दिखलाने और पामर के बदन में लिपटने की जगह ढूँढ़ने लगे। प्राणों की आशा छोड़कर बेहद बल-पूर्वक उसने इस मत्स्य की पकड़ को अलग करना चाहा, परंतु जैसे-जैसे उसने छुड़ाने की कोशिश की, तैसे-ही-तैसे उसकी टाँग और हाथ की पकड़ और भी कड़ी होती गई। इसके बाद, धीरे-धीरे, उस प्रचंड और भयानक जीव के बाक़ी के भी भुज-दंड पामर के बदन में, जहाँ जिसे अच्छी पकड़ की जगह मिली, लिपट गए। यद्यपि ये भुज-

दंड चिकने और कुछ हिलते हुए-से थे, तथापि उनकी पकड़ बे-तरह मज़बूत थी; उनमें ताक़त भी बेहद थी। पामर जो पोशाक पहने था, वह बहुत भारी थी। एक तो पहले ही उसके बोझ से वह दबा जाता था; फिर जब कई मन का यह दैत्य-जीव उसके बदन से लिपट गया, तब उस बेचारे की जो हालत हुई, उसके बयान की ज़रूरत नहीं। वह अंदाज़ ही से जानी जा सकती है। पर प्राण किसको नहीं प्यारे होते! इससे इस बोझ की कुछ परवा न करके उसने अपने बदन को इधर-उधर हिलाना और झटके देना शुरू किया। परंतु दैत्यराट् की पकड़ ज़रा भी ढीली न हुई। पामर को अत्यंत अफ़सोस हुआ कि उसने पानी के भीतर उतरने के पहले एक चाकू न ले लिया। अब वह क्या करे! दैत्य-मत्स्य की आँखें उसकी आँखों के पास पहुँच गईं। उन्हें देखकर उसने जीने की आस छोड़ दी। उसका सारा बदन पीपल के पत्ते की तरह काँपने लगा। उस जीव के डरावने रूप को देखकर उसने बहुत चाहा कि वह चिल्लावे, पर समुद्र के भीतर का चिल्लाना बाहरवालों को कहाँ सुन पड़ता है। उस भीषण जलचर की मृत्यु-तुल्य पकड़ में आकर बहादुर से भी बहादुर आदमी पागल की तरह शोर मचाने लगते।

छूटने की कोशिश करना व्यर्थ था। ईसपात की पत्तियों से कसे जाने पर आदमी उनसे अपना छुटकारा कर सकता है, पर राक्षस-मत्स्य की पकड़ से वह नहीं छूट सकता। उसने सुन रक्खा था कि छोटे-छोटे राक्षस-मत्स्यों से पकड़े जाने पर ग़ोताख़ोरों ने उनकी चोंच को ज़ोर से दबाकर मोज़े की तरह भीतर कर दिया और इस तरह उसे उलटाकर अपनी जान बचाई है। पर पामर को इतने बड़े और इतने ज़ोरावर जीव की चोंच पकड़कर उलटाना बिलकुल ही असंभव जान पड़ा। उसे यह ख़याल होने

लगा कि किस तरह मुझे मौत आवेगी। क्या यह जीव मेरी ग़ोताख़ोर पोशाक को दबाकर उसके भीतर ही मुझे पीस डालेगा या उसे अलग करके वह मेरा काम तमाम करेगा? अच्छा हो, यदि वह पिछली तरकीब से मुझे मारे; क्योंकि इस तरह बहुत जल्द मौत आ जायगी और कम तकलीफ़ होगी।

मरने के लिये तैयार होने के पहले पामर ने देखा कि उसका एक हाथ अभी तक ख़ाली है। उसे उस दैत्यराट् के किसी भुज-दंड ने नहीं पकड़ा। इसके बाद उसने देखा कि उस दैत्य ने उस २०० मन के पत्थर के टुकड़े का लगाव बिलकुल ही छोड़ दिया और बहुत जल्द वह उसके बदन में अपने सब भुज-दंडों को लगाकर चिपट गया। इस पर उसे कुछ धीरज हुआ। यदि वह भयंकर जीव उस शिला को पकड़े रहता, तो यह कहानी कहने को न मिलती; और पामर का नाम भी उन्हीं लोगों के रजिस्टर में दर्ज हो गया होता जो ग़ोताख़ोरी के समान ख़तरे का काम करके, आज तक, इसी तरह मौत के मुँह में पड़ चुके हैं।

बड़ी बहादुरी के साथ पामर ने डर, घबराहट और घृणा को ज़रा देर के लिये दूर किया और अपने उस ख़ाली हाथ को ऊपर उठाया। उससे उसने वह रस्सा पकड़कर हिलाया, जिसके सहारे वह नीचे उतरा था। उसका इशारा ऊपर पहुँचते ही जो लोग वहाँ थे, उन्होंने उसे समुद्र के भीतर से ऊपर खींचना शुरू किया। यह देखकर दैत्य-राट् मत्स्य ने अपनी एक भुजा नीचे को लटकाई और चाहा कि उससे उस पत्थर की शिला को वह पकड़ ले। पर वह चूक गया। उसे वह पकड़ न सका और पामर के बदन से लिपटा हुआ वह ऊपर निकल आया।

पामर के बदन में उस महाडरावने मत्स्य को लिपटा देख ऊपरवाले आदमी बे-तरह भयभीत हो गए। पामर उस समय

बेहोश था। कुछ आदमियों ने उसे थामकर समुद्र के किनारे सूखी ज़मीन पर रक्खा और कुछ चाकू और कुल्हाड़ियाँ ढूँढ़ने दौड़े। उस दैत्य-मत्स्य पर बड़ी ही क्रूरता से हमला हुआ। उसके भुज-दंड काटे जाने लगे। परंतु हज़ार प्रयत्न करने पर भी उन्होंने अपनी पकड़ न छोड़ी। काटे जाने पर वह काँपते रहे, पर जहाँ पर थे, वहाँ से एक इंच भर भी न टसके। जब आदमियों ने अपनी सारी शक्ति ख़र्च कर दी और उनके छोटे-छोटे सैकड़ों टुकड़े कर डाले, तब उनकी पकड़ ढीली हुई। और तब उन लोगों ने पामर को उस महामत्स्य के गाढ़ालिंगन से अलग कर पाया। उस समय बेहोश पामर को होश में लाने का यत्न शुरू हुआ।

उस मछली के टुकड़े यथास्थान रखकर नापने पर मालूम हुआ कि वह ११½ फ़ुट की थी। इतना बड़ा राक्षस-मत्स्य दक्षिणी अफ़्रीका के किसी समुद्री किनारे में, तब तक, नहीं देखा गया था। इस जीव का फ़ोटो न लिया जाने पाया था कि कुछ इटालियन लोग उसे ले भागे। उन्हें यह जीव बहुत पसंद है। परंतु उसके दो भुज-दंड अभी तक केप-टाउन में, साउथ-आर्म-नामक जगह पर जो जहाज़ी दफ़्तर है उसमें, रक्खे हैं। उसका चमड़ा भी वहाँ रक्खा है।

[सितंबर १९०८

विलक्षण मछलियाँ

सुनकर विश्वास नहीं होता कि संसार में ऐसे भी जीव हैं, जो अपने से दूने जीव को एक ही दफ़े में निगल जाते हैं। पर बात सच है। इसमें ज़रा भी बनावट नहीं। कुछ मछलियाँ ऐसी हैं, जो बहुत गहरे समुद्र के भीतर रहती हैं। वे इतनी गहराई में

रहती हैं कि वहाँ घोर अंधकार छाया रहता है और वहाँ का पानी बर्फ़ के समान ठंढा होता है। बहुत अधिक गहराई में रहने के कारण इन मछलियों के एक वर्ग-इंच शरीर के ऊपर छः मन से लेकर सौ मन तक पानी रहता है। पर इस बोझ से उनको कुछ भी तकलीफ़ नहीं होती।

गहरे और उथले समुद्र की परिभाषा क्या है ? उसका लक्षण क्या है ? कितने पानी की गिनती गहरे पानी में की जाती है ? समुद्र की जहाँ जैसी स्थिति होती है, वहाँ उसी हिसाब से सूर्य की किरणें उनके भीतर प्रवेश करती हैं। मामूली तौर पर वे १,२०० फुट की गहराई के आगे नहीं जातीं ; पर कभी-कभी वे २४,००० फुट तक, नहीं उसके भी आगे चली जाती हैं। जहाँ तक सूर्य की किरणें पानी के भीतर घुसती हैं, वहाँ तक के समुद्र की गिनती उथले और उसके आगे की गहरे समुद्र में होती है। पर मछलियाँ इतनी गहराई की कुछ भी परवा नहीं करतीं। वे हज़ारों फुट गहरे समुद्र के भीतर आनंद से रहती हैं। इतनी गहराई में रहने के कारण उनके शरीर की बनावट और उनकी आदत वग़ैरह में बहुत फ़र्क़ होना चाहिए था । पर फ़र्क़ बहुत थोड़ा होता है। जो प्राणी हमेशा अंधकार में रहते हैं, उनको आँखों से बहुत कम काम पड़ता है। इसलिये उनकी देखने की शक्ति जाती रहती है। उनके आँखें होती ही नहीं। प्रकृति जिस चीज़ की ज़रूरत जिसको नहीं समझती, उसको वह देती ही नहीं। पर मछलियों के विषय में विचित्रता है। इतनी दूर गहरे समुद्र के भीतर उनको आँखों से काम नहीं पड़ता। पर कुछ विशेष प्रकार की मछलियों को छोड़कर औरों के आँखें होती हैं। इस विशेषता को छोड़कर गहरे समुद्र की मछलियों की बनावट जैसी होनी चाहिए, वैसे ही होती है।

गहरे समुद्र की मछलियाँ जब समुद्र के ऊपर लाई जाती हैं, तब उनकी स्थिति में अंतर पड़ जाता है। हड्डियाँ मुलायम हो जाती हैं—गुँधे हुए पतले आटे के समान नरम मालूम होती है। आँखें बाहर निकल आती हैं। मेदा फूल कर बड़ा हो जाता है और बाहर निकलकर लटकने लगता है। ये मछलियाँ अपने से बहुत बड़ी मछलियों को निगल लेती हैं। कभी-कभी ये समुद्र की सतह पर आ जाती हैं और धीरे-धीरे तैरती हुई दिखलाई देती हैं। जब ये मछलियाँ बहुत बड़ा शिकार निगल जाती हैं, तब वह शिकार उनके पेट के भीतर छटपटाता है और निकलने की कोशिश करता है। इससे उनको तकलीफ़ होती है और बहुत बेचैन होकर अपना गहरा घर छोड़ ऊपर आ जाती हैं।

कुछ मछलियाँ ऐसी भी देखने में आती हैं जो रहती तो बहुत गहरे समुद्र में हैं, पर उनका डीलडौल समुद्र की सतह पर रहनेवाली मछलियों से बहुत कुछ मिलता है। इससे सूचित होता है कि उनकी कोई अलग जाति नहीं है। गहराई में रहने के कारण सिर्फ़ थोड़ा-सा फ़र्क़ उनकी बनावट में हो गया है। समुद्र की सतह पर रहनेवाली मछलियाँ भी अकसर गहरे समुद्र के भीतर पाई जाती हैं। क्यों ऐसा होता है, ठीक मालूम नहीं। जो जीव गहरे समुद्र में रहे, उसका शरीर उसकी स्थिति के अनुकूल होना चाहिए और जो ऊपर रहे, उसका उसकी स्थिति के अनुकूल। शायद इस तरह की मछलियों को प्रकृति ने दोनों स्थितियों में रहने योग्य बनाया है। या यदि नहीं बनाया, तो प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन करने से कुछ विकार उनके शरीर में हो जाता है, जिससे उनकी बनावट में फ़र्क़ मालूम होता है।

गहरे समुद्र में रहनेवाली मछलियाँ बे-तरह खाऊ होती हैं। जो जीव उनके सामने पड़ जाता है, उसे वे निगले बिना नहीं छोड़तीं।

उस समय वे छोटे-बड़े का ख़याल नहीं करतीं। एक बार एक चार इंच की मछली के पेट में साढ़े सात इंच की मछली मिली। दो मछलियाँ साढ़े छः-छः इंच की थीं। उनका पेट खोलने पर देखा गया कि साढ़े दस-दस इंच की मछलियाँ उन्होंने निगली थीं। जब ये लंबी-लंबी मछलियाँ निगली जाती हैं, तब मेदे में लिपटकर उनका गोला-सा बन जाता है। उसी हालत में वे धीरे-धीरे हज़म हुआ करती हैं। इनका मेदा रबर की तरह घट-बढ़ सकता है। जब ये भूखी होती हैं, तब मेदा सिकुड़कर छोटा हो जाता है और पेट के नीचे एक छोटी-सी थैली की तरह लटका रहता है। पर जब ये किसी बड़ी मछली को निगल जाती हैं, तब वह खिंचकर बे-तरह बढ़ जाता है और बहुत दूर तक पेट के नीचे लटक पड़ता है। इन मछलियों के दाँत पीछे की तरफ़ कुछ झुके हुए होते हैं। उनकी मदद से बड़ी-बड़ी मछलियों को ये अपने गले के नीचे उतार देती हैं। यदि कोई मछली इनके दाँतों के बीच आ जाती है, तो हज़ार कोशिश करने पर भी वह नहीं छूट सकती। इनके दाँत ऐसे होते हैं कि वे शिकार को पकड़कर भीतर ही की तरफ़ ढकेलते हैं। इन मछलियों का चमड़ा भी घट-बढ़ सकता है। इससे शिकार को निगलते समय ये अपने मुँह के चमड़े को आगे खींच कर शिकार को बहुत जल्द मुँह के भीतर कर देती हैं।

एक साहब ने इन विलत्तण मछलियों के पेट में इनसे कई गुना बड़ी मछलियाँ पाई हैं। किसी-किसी मछली के पेट में दस-दस, पंद्रह पंद्रह जलचर एक साथ पाए गए हैं। एक बार एक मछली के पेट में कटलफ़िश नाम की एक मछली निकली थी। जिसने इस मछली को निगला था, वह चौड़ाई में इससे बहुत कम थी। पर जान पड़ता था कि वह इसे सहज ही में निगल गई थी।

गहरे समुद्र में रहनेवाली मछलियों में एक और विलक्षणता है। इस जाति की जो मछलियाँ हैं, उनमें से किसी-किसी के बदन से फास्फर के रूप में एक तरह का प्रकाश-पुंज निकला करता है। संभव है, समुद्र के भीतर अँधेरे में ये मछलियाँ इसी प्रकाश से सब चीज़ें देखती हों और इसीलिये वे अपनी आँखें काम में ला सकती हों। यह प्रकाश-पुंज अक्सर गलफड़ों के पास से निकलता है। पर किसी-किसी मछली का सारा बदन चमकीला होता है; किसी ख़ास जगह से प्रकाश नहीं निकलता। एक मछली का नाम है "अग्निगर्भ मछली"। उसकी पीठ पर अभ्रक के समान, पर खूब चमकदार, निर्जीव मांस के छोटे-छोटे टुकड़ों की एक क़तार होती है। उसी से प्रकाश निकला करता है।

इन मछलियों का रंग काला या भूरा होता है। रंगों की उत्पत्ति के लिये सूर्य की किरणों का मिलना बहुत ज़रूरी ख़याल किया जाता है। पर गहरे समुद्र की कोई-कोई मछली लाल या गुलाबी रंग की भी होती है। जहाँ वे रहती हैं, सूर्य की किरणें नहीं जातीं। नहीं मालूम किस तरह उनको ये रंग मिलते हैं।

गहरे समुद्र के भीतर रहनेवाली इन मछलियों के विषय में अभी तक बहुत कम बातें मालूम हुई हैं। कोई चालीस ही पचास वर्ष से इस तरफ़ योरप और अमेरिकावालों का ध्यान गया है। इनकी जाँच हो रही है। आशा है और भी अनेक विलक्षण बातें इनके विषय में मालूम हों।

[सितंबर १९०९

जल-मानुस

ईश्वर ने अनेक अद्भुत-अद्भुत प्राणी उत्पन्न किए हैं। वन-मानुस ही बनाकर वह चुप नहीं रहा। उसने जल-मानुस भी बनाया है। जहाँ तक हम जानते हैं किसी ने यह बात कहीं नहीं लिख रक्खी कि इस देश में भी जल-मानुस पाया जाता है अथवा नहीं; परंतु और-और देशों में इस जीवधारी के विषय में अनेक बातें लिख रक्खी गई हैं।

सन् १७३१ ईसवी में हंगारी-देश के साँगी नामक गाँव में एक जंगली स्त्री देखी गई। उसका मुँह और उसके हाथ काले थे और उन पर एक प्रकार के धब्बे थे। उसको देखकर लोग उसके पीछे दौड़े और उसे पकड़ने का यत्न करने लगे; परंतु वह दौड़कर एक पेड़ पर चढ़ गई और किसी प्रकार नीचे न उतरी। उसके उदासीन मुँह को देखकर लोगों ने जाना कि वह प्यासी है। इसलिये उन्होंने पेड़ के नीचे पानी रख दिया और वहाँ से वे हट गए। पानी देखकर वह जंगली स्त्री पेड़ से नीचे उतर आई और उसे पीकर फिर पेड़ पर चढ़ गई। थोड़ी देर में उन लोगों ने दो-चार फल वहाँ रख दिए और कुछ दूर पर उसे पकड़ने के लिये छिप रहे। जब वह फल लेने के लिये नीचे उतरी, तब उन्होंने उसे पकड़ लिया।

उन आदमियों में से एक का नाम विस्कौंट था। वह उसे अपने घर ले आया। घर में आकर उस स्त्री ने एक बत्तख़ देखी और उसे पकड़कर वह खा गई। यह देखकर एक जीता खरहा उसके सामने लाया गया। उसे भी मारकर चमड़े समेत वह खा गई। यदि वह कभी छूट जाती, तो बड़ी कठिनता से पकड़ी जाती। वह जन्म से जल-मानुस थी। इसलिये जब वह किसी तालाब में

छोड़ी जाती, तब बहुत प्रसन्न होती और जल के पक्षियों के समान तैरने लगती। उसे मेढक बहुत पसंद थे। पानी में दौड़ती हुई मछलियों को वह बिना किसी कठिनता के पकड़ लेती और बाहर निकलकर उन्हें बड़े प्रेम से खाती। एक दिन विस्कौंट ने अपने दो-चार मित्रों को भोजन के लिये बुलाया। जिस समय वे लोग भोजन कर रहे थे, उस समय वह स्त्री बहुत-से मेढक लेकर वहाँ पहुँच गई और वहीं पर उन्हें फाड़-फाड़कर खाने लगी। उसे इस प्रकार मेढक खाते देख कोई हँसने लगा, कोई क्रुद्ध होने लगा और कोई भोजन करना छोड़ वहाँ से उठ गया। उस गाँव से वह फ़्रांस की राजधानी पेरिस को भेज दी गई और वहीं मरी।

१७४९ ईसवी में हंगरी में दो मछुओं को एक जल-मानुस मिला। वह दस-बारह वर्ष के लड़के के बराबर था। उसके हाथ-पैर मनुष्य के हाथ-पैर के समान थे; परंतु उँगलियाँ मनुष्य की उँगलियों से बहुत बड़ी थीं। उसका सिर गोला था और आँखें छोटी थीं। मुँह चौड़ा था और नाक तोते की चोंच के समान आगे को निकली हुई थी। हंगरी के राजा ने उसे उन मछुओं से मोल ले लिया और उसे शिक्षा देने का बहुत प्रयत्न किया। परंतु वह कुछ न सीख सका। पहले वह अपने शरीर पर कपड़े ही न रहने देता था, परंतु कुछ दिनों में वह उन्हें रहने देने लगा। उसकी कमर में रस्सी बाँधकर एक तालाब में उसे छोड़ देते थे। पानी में कभी वह तैरता, कभी डुबकी लगाता और कभी लड़कों के समान पानी से खेला करता। पानी से निकलने की इच्छा ही उसे न होती। बड़ी कठिनता से बल-पूर्वक उसे पानी से निकालना पड़ता। एक बार उसकी कमर से रस्सी खुल गई। इससे वह पानी-ही-पानी न-जाने कहाँ चला गया। एक दिन वह पास

की नदी में तैरता हुआ देखा गया। परंतु अनेक प्रयत्न करने पर भी वह पकड़ा न जा सका।

१७९९ ईसवी में हामेन नगर के निकट भी एक जल-मानुस मिला। वह बंदर के समान हाथों और पैरों से चलता था और पेड़ों पर दौड़ा करता था। उसकी अवस्था बारह-तेरह वर्ष की जान पड़ती थी। वह मनुष्य हानोवर नगर में लाया गया और राजा जार्ज को भेंट किया गया। राजा के यहाँ से एक दिन वह छूट गया और छूटकर जंगल में एक ऊँचे वृक्ष पर जा बैठा। वहाँ से वह बड़ी कठिनता से पकड़कर लाया गया। उसे सिखलाने के लिये अनेक प्रयत्न किए गए; परंतु सब व्यर्थ हुए। वह इतना जंगली था कि बड़ी कठिनता से अपने सिर पर कपड़े रहने देता था। उसे बिछौना अच्छा न लगता था। वह अपने हाथ-पैर अपने पेट पर रख कर, पेड़ पर सोने के समान, सिकुड़ा हुआ एक जगह सो जाया करता था।

१७२६ ईसवी में वह इँगलैंड-भर में सबको दिखलाने के लिये फिराया गया। एक बार एक साहब उसे देखने गए थे। वे लिखते हैं कि जब वह किसी को गाते सुनता था, तब प्रसन्न होकर ताली बजाने लगता था और अपना सिर हिला-हिलाकर अपनी प्रसन्नता प्रकट करता था। किसी के मुँह से जो गीत वह सुनता था, उसकी वह नक़ल करने लगता था और देर तक मन-ही-मन गुनगुनाया करता था। उसे क्रोध बहुधा कम आता था; परंतु जब आता था, तब वह अपने हाथ-पैर अपने-ही-आप काटने लगता था। कभी-कभी वह काम भी करता था; परंतु यदि कोई उसे देखता न रहे, तो वह उसे बिगाड़ भी डालता था। एक बार उसने खाद की गाड़ी को एक पल-भर में भर दिया। परंतु जो आदमी उससे काम लेता था, वह ज्यों ही वहाँ से हटा, त्यों ही बात-की-बात में उस

जल-मनुष्य ने खाद को फेंककर गाड़ी को ख़ाली भी कर दिया।

१७८९ ईसवी में, उस जल-मनुष्य की मृत्यु हर्टफ़ोर्टशायर में, हुई।

[एप्रिल १९०३

दरियाई घोड़ा

प्राणिवर्ग तीन भागों में विभक्त हैं—जलचर, थलचर और नभचर। पर कुछ जीव ऐसे भी हैं, जिनको जलचर भी कह सकते हैं और थलचर भी। दरियाई घोड़ा इसी प्रकार के जीवों में है। यह जानवर अफ़रीका के सिवा संसार में और कहीं नहीं पाया जाता। इसकी दो जातियाँ हैं। पहली जाति के जानवर अफ़रीका महाद्वीप के सहारा नामक प्रसिद्ध रेगिस्तान से लेकर कालोनी अंतरीप तक के प्राय: सभी दरियाओं में पाए जाते हैं। इनको "साधारण दरियाई घोड़ा" कहते हैं। दूसरी जातिवाले, जो क़द में बहुत छोटे होते हैं, अफ़रीका के पश्चिमी किनारों पर तथा उन नदियों में जो शाड नामक झील में गिरती हैं, रहते हैं। इनका नाम लाइबीरियन दरियाई घोड़ा है।

साधारण दरियाई घोड़ा क़द में बहुत बड़ा होता है। उसकी लंबाई पंद्रह फुट के क़रीब होती है और ऊँचाई चार फुट से भी अधिक। शरीर मोटा और सिर भारी होता है। टाँगें छोटी, पर मज़बूत होती हैं। इतना भारी होने पर भी वह ज़मीन पर बड़ी तेज़ी से दौड़ सकता है। और पानी में आसानी से तैर सकता है। उसके बदन पर बाल नहीं होते। चमड़ा बहुत मोटा होता है, उसमें हज़ारों छोटे-छोटे सूराख़ होते हैं जिनसे हमेशा गाढ़ा लसलसा शारीरिक मल

निकला करता है। माथा बहुत बड़ा होता है और दुनिया में जितने चौपाए हैं, उन सबके माथे से अधिक चौड़ा होता है। नथुने छोटे होते हैं और जब वह पानी में डुबकी लगाता है, तब बंद हो जाते हैं। आँखें उभड़ी हुई, कुछ पीछे की ओर होती हैं। कान इतने छोटे होते हैं, मानों वे काट लिए गए हैं। वे भी पानी के अंदर बंद हो जाते हैं। टाँगों के सिरे पर खुर के समान चार उँगलियाँ होती हैं। पूँछ ज़रा-सी होती है और उसके दोनों ओर, किनारे-किनारे, खड़े बाल होते हैं। मुँह बहुत बड़ा होता है; इतना चौड़ा मुँह दुनिया में और किसी जानवर का नहीं होता। दाँत और दाढ़ें भी इतनी बड़ी होती हैं कि जब वह मुँह खोलता है, तब बड़ा भयंकर जान पड़ता है।

दरियाई घोड़ा तमाम दिन नदियों में या उनके किनारों पर रहता है। केवल रात को वह पानी का पिंड छोड़ता है। उस समय वह अपने पेट के लिये बड़ी दूर-दूर तक का धावा मारता है और पकी हुई फ़सलों को बहुत हानि पहुँचाता है। वह खाता भी बहुत है। एक ही दफ़े में पाँच-छः मन चारा खा डालना उसके लिये कोई बड़ी बात नहीं। जल और थल के छोटे-छोटे पौधे और घास उसका प्यारा भोजन है। कच्चा तथा हरा अन्न भी उसको बहुत पसंद है। पानी के अंदर वह घंटों पड़ा रहता है। साँस लेने के लिये वह बहुत कम ऊपर आता है। आँख और कान बंद हो जाने के कारण, उनके भीतर पानी न जाने से जल के अंदर रहने में उसे और भी अधिक सुभीता रहता है।

एशियावाले तो इसका हाल अभी बहुत कम जानते हैं; पर योरपवाले इसका हाल बहुत दिनों से जानते हैं। बाइबिल में भी एक आध जगह इसका ज़िक्र आया है। रोम और ग्रीस के कितने

ही प्राचीन ग्रंथकारों ने, समय-समय पर, इसका हाल लिखा है। कई इतिहासकारों का मत है कि प्राचीन काल में रोम के सर्कसों और तमाशों में इसकी प्रदर्शिनी होती थी। रोमवाले इसकी सूरत-शकल और इसके करतबों को बड़े चाव से देखते थे। समय पाकर रोम में इसकी इतनी चाह हुई कि अपने जन्म-स्थान ईजिप्ट में इसका मिलना मुश्किल हो गया। हीरोडोटस नामक प्रसिद्ध इतिहासकार के कथनानुसार ईजिप्ट में कहीं-कहीं यह पवित्र समझा जाता था। एक और इतिहास व लेखक कहता है कि हानिकारक और भयंकर होने के कारण यह जानवर ईजिप्ट में मृत्यु और बरबादी के देवताओं का प्रतिनिधि समझा जाता था और उनको प्रसन्न रखने के लिये इसकी पूजा की जाती थी। पर यह बड़े आश्चर्य की बात है कि इन ग्रंथकारों, इतिहास-लेखकों और विज्ञानवेत्ताओं ने इस जानवर की सूरत-शकल का वर्णन किया है, वह एक दूसरे से नहीं मिलता और जो जानवर जो आज-कल पाए जाते हैं, उनके और इनके ग्रंथों में वर्णित जानवरों के रूप में भी थोड़ी बहुत भिन्नता है। योरप के जिन प्राचीन चित्र-कारों ने इसका चित्र खींचा है, उनका भी यही हाल है। जो हो, इसमें शक नहीं कि उन ग्रंथकारों और चित्रकारों में से अधिकांश ने उसी जाति के जानवरों का वर्णन और चित्रण किया है, जिसका हाल हम यहाँ लिख रहे हैं।

इसके बाद कोई दो हज़ार वर्ष तक योरपवाले इसे भूले-से रहे। आधुनिक काल में इँगलैंड की जंतु विद्या-संबंधिनी एक सभा ने अपनी जंतु-शाला के लिये सबसे पहले, सन् १८५० ईसवी में, एक दरियाई घोड़े का बच्चा ईजिप्ट से मँगवाया। उसको पकड़कर लानेवालों को बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ीं। यह जानवर जिस तरह पकड़कर लाया गया था, उसका हाल एक साहब ने

लिखा है। ईजिप्ट के "पाशा" की आज्ञा से कई आदमी इसको पकड़ने के लिये नील नदी की ओर रवाना हुए। नदी में कोई दो हज़ार मील चढ़ाई की तरफ़ चलने के बाद एक टापू में केवल दो दिन का पैदा हुआ एक बच्चा दिखाई पड़ा। शिकारियों के मुखिया ने देखते ही झट उसे गोदी में उठा लिया और नाव की ओर ले चला। पर उसके शरीर के असंख्य छिद्रों से निरंतर रस बहते रहने के कारण वह इतना चिकना हो गया था कि शिकारी के हाथों न सध सका और तुरंत फिसल पड़ा। ज़मीन पर आते ही वह नदी की ओर लपका। पर शिकारी बड़ा चतुर था ; उसने चट ऐसा भाला मारा कि वह आगे न बढ़ सका। कुशल हुई कि उसके अधिक चोट नहीं आई ; सिर्फ़ मामूली खरोंचा-सा लग गया। उसको लेकर शिकारी लोग ईजिप्ट की राजधानी केरो लौट आए। वहाँ वह माननीय मरे साहब के सिपुर्द किया गया। उसकी रखवाली के लिये हामिद सूफ़ीकनआँ नामक एक नूबिया-निवासी अरबी नौकर रखा गया। कोई चार महीने वहाँ रखकर वह इँगलैंड भेजा गया। इँगलैंड की जंतु-शाला में पहुँचते ही वह जी-भरकर खूब नहाया। वहाँ उसको खाने के लिये पहले दूध और आटा दिया जाता था। फिर तो वह सूखी घास, भूसी, अन्न, जड़ें, हरे फल आदि और भी कितनी ही चीज़ें खाने लगा। आने के कुछ ही दिनों बाद उसकी खूराक पचास सेर प्रतिदिन हो गई। अपनी जवानी में वह तौल में एकसौ बारह मन हो गया था। सन् १८७८ में जब वह मरा, तब उसे देखने के लिये एक मेला-सा लग गया था। १८५३ में ईजिप्ट के उसी स्थान से एक मादा लाई गई थी। उससे १८७१ में पहला बच्चा और १८७२ में दूसरा बच्चा पैदा हुआ ; पर दोनों थोड़े ही दिनों में मर गए। उसके दूसरे साल एक और बच्चा पैदा हुआ। वह अभी तक

जीवित है। सुनते हैं, उसके द्वारा इँगलैंड में उसके वंश की खूब वृद्धि हुई है।

दरियाई घोड़े झुंड-के-झुंड इकट्ठे रहते हैं। जहाँ उनको कोई सतानेवाला नहीं होता, वहाँ वे निडर होकर पानी के बाहर निकल आते हैं और मज़े में धूप खाया करते हैं। पर जहाँ शिकारिए के क़दम शरीफ़ पहुँचते हैं, वे वहाँ पानी के ऊपर आते ही नहीं। यदि आते भी हैं, तो झाड़ियों के बीच में इस तरह छिपकर बैठते हैं कि उनका पता नहीं लग सकता। कमिंग नाम के एक साहब एक बार अफ़्रीका में शिकार खेलने गए थे। वहाँ उन्होंने लिम्पपो नामक नदी के किनारे एक ऐसा स्थान देखा, जिसको दरियाई घोड़ों की बस्ती कहना चाहिए। उसका हाल वे इस तरह लिखते हैं—

"नदी के एक साएदार स्थान से दरियाई घोड़ों के बोलने का शब्द आ रहा था। उसे सुनकर हम लोग उसके पास गए। वहाँ हमने जो दृश्य देखा, वह बड़ा ही अद्भुत और कौतूहल-जनक था। रेती पर कोई तीस घोड़ियाँ और बच्चे खड़े थे। उनके ठीक सामने पानी में और बीस घोड़ियाँ अपना सिर और पीठ पानी के बाहर निकाले खड़ी थीं। वहाँ से कोई पचास गज़ की दूरी पर आठ दस महाभयंकर घोड़े पानी के बाहर सिर निकाले खड़े थे। कोई १०० गज़ चलकर और दस-बारह घोड़े, घोड़ियाँ और बच्चे नदी के बीचो-बीच खड़े थे। कोई-कोई घोड़े अपना सिर अपने साथी की पीठ पर रक्खे हुए थे।

अफ़्रीका-निवासी इसका शिकार बर्छी से करते हैं। बारह फुट लंबी एक मज़बूत लकड़ी के अगले सिरे पर भाले की तरह नोक और मछली की-सी कटिया होती है। एक लंबी डोरी का एक सिरा इसी कटिया के पास बाँध दिया जाता है। डोरी का कुछ हिस्सा बर्छी में लपेटकर बाक़ी खुली छोड़ दिया जाता है।

डोरी के खुले हुए अर्थात् दूसरे सिरे को एक घन्नई (यह चीज़ पानी के ऊपर तैरा करती है) में बाँध देते हैं। जब इस बर्छी से जानवर पर वार किया जाता है, तब वह इसको लिए हुए पानी में ग़ोता मारता है। उस समय यह घन्नई ही इस बात का पता देती है कि जानवर किस जगह पर है। जिस स्थान पर यह घन्नई होती है, उसके दोनों तरफ़ बड़े-बड़े रस्से नदी के दोनों किनारों पर पेड़ों में बाँध दिए जाते हैं। इन रस्सों के बीच में जानवर जितनी ही बार साँस लेने को ऊपर आता है, उतनी ही बार तब तक उस पर भालों की बौछार होती है; जब तक कि वह मर नहीं जाता।

सर सेमुयल बेकर नामक एक साहब बहुत दिनों तक अफ़्रीका में सैर करते रहे थे। पूर्वोक्त बर्छी के द्वारा जिस प्रकार दरियाई घोड़े का शिकार किया जाता है, उसका आँखों-देखा हाल उन्होंने लिखा है। वे कहते हैं—

"अंत में हम लोग उस नदी के पास पहुँचे। उसके बीच में कई टापू थे। एक टापू पर बहुत-से दरियाई घोड़े खड़े थे। उनमें एक नर था, बाक़ी सब मादाएँ। एक बच्चा ढलुई चट्टान पर, भद्दी मूर्त्ति की तरह, खड़ा था। दूसरा अपनी माँ की पीठ पर था, जो कि पानी पर धीरे-धीरे तैर रही थी। शिकार करने के लिये यह बड़ी अच्छी जगह थी। मेरे साथ के शिकारियों ने मुझसे लेट जाने को कहा और वे लोग जंगल की तरफ़ चल दिए। थोड़े ही देर में, जिस जगह पर दरियाई घोड़े धूप ले रहे थे, उसके पीछे दो सौ क़दम की उँचाई से उतरते हुए मैंने उन लोगों को देखा। वे नदी में उतरे और तैर कर चट्टान के पास आए। वहाँ पर वे डुबकी लगा गए और क्षणमात्र में उस चट्टान के पीछे निकले; जिस पर बच्चा खड़ा था। यह बड़ी वीरता का काम था। बेचारे जानवरों को आनेवाली विपत्ति

की कुछ भी ख़बर न थी। ज्यों ही शिकारियों ने बर्छी फेंकी, त्यों ही बच्चे ने डुबकी लगाई। शिकारियों ने भी बर्छी फेंकते ही डुबकी लगाई और पानी के भीतर-ही-भीतर किनारे आकर झट ऊपर चढ़ गए। पहली बर्छी ठीक नहीं लगी थी; पर दूसरी दरियाई घोड़े के शरीर में घुस गई थी।

"यह शिकार बड़ा ही भयंकर था। जानवर क्रोध से उन्मत्त हो उठा। चिटकते, फुफकारते और गरजते हुए वह पानी के ऊपर आया। पर बर्छी से संबंध रखनेवाली प्रकांड घन्नई को देखते ही वह फिर डुबकी लगा गया। शिकारियों के लिये यह अच्छा मौक़ा था। उन्होंने फ़ौरन् एक आदमी को रस्से का एक सिरा देकर उस पार भेजा। और दूसरे रस्से को पहले के बीचोबीच बाँधकर एक ही झटके में घन्नई को इन दोनों रस्सों के बीच में कर लिया।

"थोड़े ही देर में घोड़ा फिर पानी से, बड़े वेग से उछला और अपने महाविकराल दाँतों को पीसता हुआ, भयंकर क्रोध से पागल होकर, इतनी ज़ोर से फुफकारें मारने लगा कि उसके आसपास का जल फेन के रूप में हो गया। उसने फिर डुबकी लगाई। हम लोग कुछ हटकर एक बड़ी चट्टान पर खड़े हो गए।

"अब की बार वह जानवर शिकारियों से दस गज़ की दूरी पर निकला। भाड़ के समान अपना भयानक मुँह फैलाकर, ज्यों ही उसने रस्से को दबोचना चाहा, त्यों ही उस पर सपासप दो बर्छियाँ गिरीं।

"बार-बार भागना कायरता समझकर उस महाभयंकर क्रोधांध जानवर ने एक ही छलाँग में बड़ी वीरता से किनारे पर आकर बड़े वेग से शिकारियों पर आक्रमण किया। पर शिकारी भी डरनेवाले आदमी न थे। उन्होंने बहादुरी से उसका सामना

किया। कोई छः भाले एक ही साथ उसके मुँह पर गिरे। बाक़ी आदमियों ने उसकी आँखों पर बालू झोंकना शुरू किया। भालों की अपेक्षा बालू ने बड़ा काम किया। भालों को तो उसने अपने दाँतों से तिनके की तरह तोड़ डाला। पर बालू ने उसे अंधा कर दिया। वह नदी की ओर भागा। क्षण-मात्र में वह फिर ऊपर आया और मुँह खोलकर शिकारियों पर झपटा। इस बार उसका भयानक मुँह इतना खुला हुआ था कि उसके भीतर दो आदमी सहज में समा सकते थे। एक शिकारी ने भाले से और दूसरे ने तलवार से उस पर वार किया। पर उसका कुछ असर न हुआ। फिर आँखों में बालू झोंककर उससे पीछा छुड़ाया गया। इसी तरह छः बार उस विकट दरियाई घोड़े ने शिकारियों पर आक्रमण किया। शिकारियों के कितने ही भाले टूट गए। बाक़ी कुंद हो गए। यह विकट युद्ध तीन घंटे तक होता रहा। सूर्यास्त का समय आ गया। मेरे साथी शिकारियों ने मुझसे अंतिम उपाय अवलंबन करने को कहा। इसका फल यह हुआ कि मेरी बंदूक़ की एक ही गोली ने उसका काम तमाम कर दिया।"

पूर्वोक्त रीति के सिवा बर्छी से शिकार करने का एक और भी ढंग है। शिकारी लोग जानते हैं कि दरियाई घोड़ा प्रायः ऐसे रास्तों पर चलना बहुत पसंद करता है, जिनके दोनों ओर ऊँचे-ऊँचे वृक्ष और लंबी घास हो। ऐसा रास्ता पाकर शिकारी एक बड़ी मज़बूत बर्छी में कई भारी-भारी पत्थर और एक रस्सा बाँध देते हैं। फिर रस्से को किसी पेड़ की ऐसी डाल पर डालते हैं, जो रास्ते के ठीक ऊपर होती है और रस्से को तब तक खींचते रहते हैं, जब तक बर्छी डाल के पास नहीं पहुँच जाती। इसके बाद वे रस्से के दूसरे सिरे को, नीचे किसी पेड़ के तने में एक फेरा लपेटकर,

उस पेड़ के ठीक सामने, सड़क के उस पार, दूसरे पेड़ के तने में ढीली-ढीली लपेट देते हैं। इस तरह रस्सा रास्ते में तन जाता है। जानवर ज्यों ही उस रास्ते से निकलता है, त्यों ही रस्से में उलझता है। उलझने के साथ ही रस्सा खुल जाता है और ज़हर से बुझी तथा पत्थरों से लदी हुई बर्छी, वज्र की तरह, उस पर गिरती है और उसको जहाँ-का-तहाँ समाप्त कर देती है।

दरियाई घोड़े का शिकार करने की एक और भी रीति है। जिन रास्तों से वह अकसर निकलता है, उन पर बड़े-बड़े गड्ढे खोदकर शिकारी लोग उन्हें घास-फूस से ढक देते हैं। गड्ढे दो-तीन से कम नहीं खोदे जाते। वे एक दूसरे के पास ही होते हैं। ज्यों ही जानवर झपटता हुआ वहाँ पहुँचता है, त्यों ही धड़ाम से गड्ढे में जा गिरता है। यदि एक को वह किसी तरह पार भी कर गया, तो दूसरे से नहीं बचता।

कभी-कभी इन गड्ढे में दरियाई घोड़ों की जगह कोई और ही जानवर आ फँसता है। एक दफ़े बड़ी दिल्लगी हुई। एक फ़रासीसी साहब शिकार की तलाश में एक ऐसी ही जगह पर अकड़ते हुए जा पहुँचे। बेचारे को क्या ख़बर थी कि आगे क्या बला है। ज्यों ही आपने बूटधारी पैर ज़ोर से रखा, त्यों ही ग़प से गड्ढे के पेंदे में जा पहुँचे। तमाम कोट-पतलून कीचड़ से लथपथ हो गया। थोड़ी-बहुत चोट भी आई। ख़ैर, जैसे-तैसे उठकर निकलने का सुभीता करने लगे। चार-पाँच घंटे के कठिन परिश्रम के बाद उस विकट कारागार से उनका छुटकारा हुआ। ईश्वर को धन्यवाद देते और कपड़े झाड़ते-पोंछते वे थोड़ी ही दूर आगे बढ़े थे कि फिर धड़ाम से दूसरे गड्ढे में जा गिरे। उससे तमाम दिन कोशिश करने के बाद शाम को बड़ी मुश्किल से वे निकल सके। सच है—"चाह कनरा चाह दरपेश।"

यात्रियों और पशु-विद्या-विशारदों का मत है कि दरियाई घोड़ा बड़ा सीधा होता है और विना सताए किसी पर आक्रमण नहीं करता। किसी हद तक यह ठीक भी है। पर इस बात के सैकड़ों उदाहरण पाए गए हैं कि वह विना सताए भी मनुष्यों पर भयंकर आक्रमण करता है।

कभी-कभी यह महाशक्तिशाली जानवर अकारण ही डोंगियों को उलटकर उनको अपने जबड़ों से तोड़ डालता है। कुछ दिन हुए, अफ़रीका में किसी ख़रबूज़े के खेत के स्वामी पर एक दरियाई घोड़े ने आक्रमण किया था और उस बेचारे को अपने विकराल जबड़ों से घायल करके मार डाला था। एक और आदमी के प्राण इस जानवर ने बड़ी बुरी तरह लिए। उसका तो आधा धड़ ही कुचलकर पालूदा बना दिया। जब दरियाई घोड़ा क्रोधांध होता है, तब वह उस चीज़ के डीलडौल पर विचार नहीं करता, जिस पर कि वह आक्रमण करता है। कई बार इसने बड़े-बड़े जहाज़ों पर आक्रमण किया है। इसी प्रकार के आक्रमणों का एक वृत्तांत बेकर साहब ने अपनी एक किताब में लिखा है। वे कहते हैं—

"रात का समय था। बड़ी ठंढ पड़ रही थी। चंद्रदेव अपनी शीतल किरणों से शीत को दूना कर रहे थे। सब लोग बड़े-बड़े कंबलों से लिपटे हुए निद्रा-देवी की गोद में थे। एकाएक पानी की बौछार और एक क्रोधांध दरियाई घोड़े की महाविकट फुफकार से मेरी नींद टूट गई। मैं उछल पड़ा। देखा कि काले पहाड़ के समान एक दरियाई घोड़ा जहाज़ पर आक्रमण करने को तैयार है। मैंने सबको जगाया और अपने नौकर से बंदूक़ लाने को कहा। बंदूक़ आने के पहले ही जानवर ने जहाज़ पर एक बड़ी बेढब टक्कर मारी। एक ही धक्के में मांस से भरी हुई एक नाव डूब

गई। सब लोग चिल्लाने लगे और उस जानवर से बचने की फ़िक्र करने लगे। वह बराबर हम लोगों पर भीम-वेग से आक्रमण कर रहा था। इतना क्रोध बुलडाग (Bull Dog) कुत्ते के सिवा मैंने किसी जानवर में नहीं देखा।

"बंदूक़ आ गई। पर वह घोड़ा लहरों और पानी की बौछारों के बीच में इतनी तेज़ी से टक्कर लगा रहा था कि उसके सिर पर ठीक निशाना लगना असंभव था।

"चंद्रमा का प्रकाश बहुत स्वच्छ था। ज्यों ही वह आक्रमण करने के लिये लपका, त्यों ही मेरी गोली उस पर छूटी। पर आश्चर्य! गोली का उस पर कुछ भी असर न हुआ। वह फिर पहले ही की तरह हमले करने लगा। मैंने भी गोली-पर-गोली छोड़ना शुरू किया। अंत में ख़ूब घायल होकर वह नदी के किनारे लंबी-लंबी घास पर जा पड़ा और गुर्राने तथा फुफकारने लगा। यह समझकर कि वह थोड़ी देर में मर जायगा, हम लोग अपनी-अपनी जगह पर सो रहे। कोई आध घंटे में हम लोग फिर धक्कों और पानी की बौछारों से जाग पड़े। वह विकराल जंतु हम पर इस तरह वार कर रहा था, मानो उसके चोट ही न लगी थी। मेरी गोली खाते ही वह लोट गया और लुढ़कता हुआ धार में पच्चीस गज़ तक बह गया। हम लोगों ने समझा कि वह मर गया। पर वह फिर लौटा और नदी के बाएँ किनारे, घास पर पड़ रहा। तब जाकर कहीं उसके प्राण निकले। सबेरे लाश देखने पर मालूम हुआ कि तीन गोलियाँ उसके कंधे पर और चार सिर में लगी थीं। एक गोली से उसका नीचे का जबड़ा टूट गया था। दूसरी ने नाक की राह होकर उसके एक बड़े दाँत को जड़ से उखाड़ दिया था।"

दरियाई घोड़ा मनुष्य-जाति के लिये उतना लाभदायक नहीं,

जितना कि साधारण घोड़ा । अफ़रीका-निवासिनी कई जातियाँ उसका मांस खाती हैं । अधिकांश योरपियन भी उससे परहेज़ नहीं करते । कोई-कोई उसे अत्यंत स्वादिष्ट बताते हैं । दरियाई घोड़ा नदियों के पौधों को खूब खाता है । इससे बड़ा लाभ होता है । यदि वह उनको न खाय, तो उनके बढ़ जाने से नदियों की जगह दलदल-ही-दलदल दिखलाई दे । इसके चमड़े के हंटर भी बनाए जाते हैं और ढालें भी । ढालें बड़ी लचीली और पायदार होती हैं । इसके दाँतों की माँग सभ्य देशों में बहुत बढ़ती जाती है ।

दरियाई घोड़े की दूसरी जाति का नाम "लाइबीरियन" है । इस जाति का जानवर पहली जाति की अपेक्षा बहुत छोटा होता है ; हमारे देश के गधे से बड़ा नहीं होता । यह तौल में भी केवल पाँच ही मन का होता है । दाँत भी इसके दो ही होते हैं । जैसा कि ऊपर लिखा गया है, यह अफ़रीका के पश्चिमी किनारों पर पाया जाता है ।

जंतुशास्त्र-वेत्ताओं का मत है कि प्राचीन काल में योरप और भारतवर्ष में भी एक विशेष जाति के दरियाई घोड़े होते थे । पर अब तो यहाँ उनका नाम-ही-नाम रह गया है ।

[ऑक्टोबर १९०८

४—स्थलचराध्याय

पिपीलिका-पुराण

योरप और अमेरिका के प्राणिशास्त्र-वेत्ताओं ने पिपीलिकाओं के विषय में अनेक पुस्तकें लिखी हैं। एक साहब ने, तो अपनी सारी उम्र चिउँटियों की परीक्षा में व्यतीत कर दी। उनकी पुस्तक इस छोटे से, पर अद्भुत, जीव-संबंधिनी पुस्तकों में सबसे अधिक प्रमाणनीय है। चिउँटी यद्यपि बहुत ही छोटा प्राणी है, तथापि उद्योग और श्रमशीलता में मनुष्य उसके सामने कोई चीज़ नहीं। उसका उद्योग सतत जारी रहता है। बरसों के लिये वे पहले ही से खाना जमा कर लेती हैं; रहने के लिये मकान बनाती हैं; नौकर-चाकर रखती हैं; गाय-भैंस रखती हैं; शिकार खेलती हैं; और पास-पड़ोस के पिपीलिका-ग्रामों पर हमला करके उनके अंडे लूट लाती हैं। उन अंडों से जो बच्चे निकलते हैं, उनको वे ग़ुलाम बनाती हैं। चिउँटियों में भी अमीर-ग़रीब, राजा-रानी इत्यादि सामाजिक व्यवस्थाएँ होती हैं।

इस अत्यल्प प्राणी, चिउँटी, की दिनचर्या समाज-रचना और दूरदर्शिता बहुत ही अद्भुत है—इतनी अद्भुत कि तत्संबंधी बातें सुन-कर हैरत होती है। चिउँटियों की विशेष-विशेष बस्तियों में फ़ौजें तक रहती हैं। ये फ़ौजें शत्रु की फ़ौजों से जी-जान होम कर

लड़ती हैं और कभी भगती नहीं। मारना या मर जाना ही इनका मुख्य मंत्र है। चिउँटियों में बल भी बेहद होता है। उसकी असीम शक्ति की बातें सुनकर आश्चर्य से दंग हो जाना पड़ता है। डीलडौल के हिसाब से, बल में, आदमी एक चिउँटी के मुक़ाबले में तृणवत् भी नहीं। चिउँटियों के विषय की कुछ बातें हम अमेरिका के एक अख़बार से यहाँ पर देते हैं।

चिउँटियों की कोई-कोई जातियाँ बड़ी ही भयंकर होती हैं। वे अपनी जान की कुछ भी परवा नहीं करतीं। जैसा ऊपर कहा गया है, वे बहुधा अपने पास-पड़ोस के पिपीलिका-मंडल पर डाके डालती हैं और उनके बच्चे और अंडे उठा लाती हैं। उनकी वे सेवा-शुश्रूषा करती हैं और बड़े होने पर उनसे गुलामी कराती हैं। परंतु उनके साथ वे कभी सख़्ती नहीं करतीं। उन्हें वे अच्छी तरह रखती हैं और कोई तकलीफ़ नहीं होने देतीं।

चिउँटियों को लड़ने-भिड़ने में बहुत मज़ा आता है। वे बड़ी लड़ाकू होती हैं। कभी-कभी अकारण ही पड़ोस की चिउँटियों की बस्ती पर चढ़ाई कर बैठती हैं और लड़ाई के मैदान में द्वंद्व-युद्ध आरंभ कर देती हैं। इसलिये चिउँटियों के पास फ़ौजें रहती हैं। उनसे वे शत्रुओं से अपना बचाव भी करती हैं और उन पर धावे करके उनसे युद्ध भी करती हैं। मनुष्य चाहता है कि संसार में मारकाट बंद हो जाय—सब कहीं शांत-भाव बना रहे। पर चिउँटियों को शांति पसंद नहीं। चुपचाप खाना और पड़े रहना उन्हें अच्छा नहीं लगता। अपनी शारीरिक शक्ति को यथावत् बनी रखने और बल दिखलाने की उन्हें सदा अभिलाषा रहती है। लड़ाई मानो उनके लिये एक तरह का व्यायाम है। मनुष्य की अपेक्षा, चिउँटियों में, आकार के हिसाब से शक्ति भी सैकड़ों गुना अधिक होती है। यह सुनकर आश्चर्य न कीजिएगा। बात बिलकुल सच है।

चिउँटियों के जीवन और स्वभाव आदि की जाँच करनेवालों को चिउँटियों की अपार शक्ति को देखकर चकित होना पड़ता है। जिस आदमी का वज़न २ मन है, वह दो ही तीन मन की वज़नी चीज़ सहज में उठा सकता है। पर यदि वह १६०० मन की वज़नी चीज़ उठा ले और घंटों सिर या छाती पर रखे रहे, तो कहीं वह शक्ति में चिउँटी की बराबरी कर सके। एक दफ़े एक चिउँटी ने पृथ्वी के एक कृत्रिम गोले को उठा लिया। परीक्षक ने उसकी एक टाँग चिमटे से पकड़कर उसे अधर में टाँग दिया। इस पर भी चिउँटी ने गोले को न छोड़ा। वह उसे वैसे ही आकाश में टाँगे रही। यदि कोई आदमी किसी ऊँची जगह से एक टाँग के बल लटका दिया जाय और उस दशा में वह अपने दाँतों से कोई डेढ़ हज़ार मन वज़नी रेल के इंजिन को पकड़े रहे, तो कहीं वह बोझ उठाने में चिउँटी की बराबरी कर सके! जो सिक्के चिउँटियों से पाँच सौ गुना अधिक वज़नी हैं, उनको तो वे सहज ही में उठा लेती हैं। इस दशा में उनकी टाँग पकड़कर आप चाहे उन्हें जितने ऊँचे पर लटका दीजिए, पर जिस सिक्के को वे एक दफ़े पकड़ लेती हैं, फिर नहीं छोड़तीं। वे अपने दाँतों और अगले आँकड़ों में ग़ज़ब की ताक़त रखती हैं। कोलंबिया के जंगली लोगों के बदन में जब कोई घाव हो जाता है, तब उस घाव के दाँतों (किनारों) को मिलाकर वे लोग उसे चिउँटियों से कटाते हैं। जब चिउँटी काटने लगती है, तब उसके धड़ को वे काट देते हैं; सिर्फ़ उसका सिर लगा रह जाता है। वह सिर धड़ से अलग हो जाने पर भी घाव को नहीं छोड़ता; वहीं रह जाता है और सीवन का काम देता है।

चिउँटियों में बोझ खींचने की भी अपूर्व शक्ति होती है। एक दफ़े एक चिउँटी अपने से १३०० गुना अधिक वज़न की एक छोटी-

सी चाँदी की खेलगाड़ी अपने बिल की तरफ़ दूर तक खींच ले गई। यदि आदमी २७०० मन वज़नी रेल की किराचियाँ अपनी कमर से बाँधकर खींच सके, तो कहीं वह इस चींटी से जीव की बराबरी कर सके। वज़नी चीज़ खींचने में चिउँटियों को यदि ऊँची जगह जाना होता है, तो वे दाहने-बाएँ मुड़ती हुई जाती हैं। इससे थकावट कम आती है। उनकी बुद्धि को तो देखिए। संसार में जितने जीवधारी हैं, कोई भी चिउँटियों के बराबर विकट लड़ाके और शूरवीर नहीं। जापानी भी उनके सामने कोई चीज़ नहीं। प्राणों को तो चिउँटियाँ कुछ समझती ही नहीं। जब दो वीर पिपीलिकाएँ भिड़ जाती हैं, तब एक के निर्जीव होकर गिरे विना उनकी पकड़ नहीं छूटती। जब दो विद्वेषी बस्तियों की चिउँटियों की सेना लड़ाई के मैदान में आमने-सामने खड़ी होती है, तब पहले नाना प्रकार के दाँव-पेंच होते हैं। धीरे-धीरे लड़ाई भयंकर रूप धारण करती है और दो-दो वीर परस्पर भिड़ जाते हैं। ऐसे समय में लड़ाई का मैदान पिपीलिकाओं के रुंड, मुंड, हस्त, पाद आदि से आच्छन्न हो जाता है। जब तक एक दल का पूरा-पूरा पराभव नहीं हो जाता, तब तक दूसरा दल मैदान से नहीं हटता। कभी-कभी चिउँटियाँ अपने से सैकड़ों गुना बड़े कीड़ों पर आक्रमण कर बैठती हैं। ऐसा करने में बहुधा अनेक चिउँटियाँ मारी जाती हैं। पर अंत में कीड़े को वे मारकर ही कल करती हैं और थोड़ी देर में अनंत चिउँटियाँ उसे उठाकर अपने बिल में पहुँचा देती हैं।

चिउँटियों की एक जाति विशेष होती है। उनके पिछले भाग में एक थैली-सी रहती है, उसमें एक प्रकार का मीठा रस भरा रहता है। उन्हें चिउँटियाँ बड़े आराम से रखती हैं। वे उनकी गाएँ हैं। उनके रस को वे धीरे-धीरे पीती रहती हैं। यदि किसी कारण वे दूध (रस) अच्छी तरह नहीं देतीं, तो अपने अगले

मूछों से उनको थपथपाकर वे दूध उतार लेती हैं और खूब छक जाने पर छोड़ती हैं ; बीच में नहीं ।

[मार्च १९०९

कस्तूरी-मृग

कस्तूरी अत्यंत सुगंधित वस्तु है । जितनी सुगंध कस्तूरी में होती है, उतनी और किसी वस्तु में नहीं । पहले तो अच्छी कस्तूरी मिलती ही नहीं और जो मिलती भी है, तो बहुत महँगी मिलती है । कस्तूरी हिरन की नाभि में उत्पन्न होती है । जिस हिरन की नाभि में वह उत्पन्न होती है, उसे कस्तूरी-मृग कहते हैं ।

कस्तूरी-मृग हिमालय पहाड़ को छोड़कर और कहीं नहीं पाया जाता । वहाँ पर भी वह उन्हीं जंगलों में विशेषकर रहता है, जो लगभग आठ हज़ार फुट की ऊँचाई पर होते हैं । उसकी पीठ का रंग भूरा और पेट का सफ़ेद होता है । उसके शरीर का पिछला भाग अगले भाग से अधिक भूरा, अर्थात् कालापन लिए हुए, होता है । कस्तूरी-मृग तीन फुट लंबा और दो फुट ऊँचा होता है । उसके कान लंबे और सिर छोटा होता है । उसके पैर बहुत पतले होते हैं । कस्तूरी-मृग के ऊपर के दो दाँत बहुत बड़े होते हैं; वे नीचे को बढ़ते हैं और मुँह के दोनों ओर निकले रहते हैं । उसकी पूँछ एक इंच से अधिक लंबी नहीं होती । जो मृग छोटे होते हैं, उनकी पूँछ बहुधा दिखलाई तक नहीं देती । बड़े होने पर कस्तूरी-मृग की पूँछ अच्छे प्रकार दिखलाई देती है ; उसमें बालों का एक गुच्छा निकल आता है । ऐसे ही मृगों की नाभि से कस्तूरी निकलती है ।

कस्तूरी-मृग की मादी कभी-कभी एक, और कभी-कभी दो, बच्चे

देती है। जून अथवा जुलाई महीने में, साल-भर में, एक ही बार वह बच्चे देती है। कस्तूरी-मृग के बच्चों के विषय में एक बात बहुत ही आश्चर्य की है। वह यह कि जब मादी दो बच्चे देती है, तब वह दोनों को एक ही पास नहीं रहने देती ; एक को एक जगह और दूसरे को दूसरी जगह रख आती है ; परंतु दूध दोनों को यथासमय पिलाती है। कस्तूरी-मृग के बच्चे बस्ती में नहीं जीते। चाहे कोई उनको जितनी अच्छी तरह से रक्खे ; और गाय अथवा बकरी का दूध पिलाकर जिलाने का चाहे जितना प्रयत्न करे ; परंतु वे नहीं जीते। सुनते हैं, कस्तूरी-मृग को पालने का अनेक लोगों ने यत्न किया ; परंतु उनका परिश्रम निष्फल गया। इस मृग को पालने से यदि वह कुछ दिन जीता भी है, तो अंधा हो जाता है। जान पड़ता है, सदैव पहाड़ के ऊपर घने जंगलों में रहने के कारण बस्ती का जल-वायु उसे हानि पहुँचाता है।

कस्तूरी-मृग, दिन-भर, अपने रहने के स्थान में पड़ा रहता है। संध्या होते ही वह बाहर निकलता है। और रात-भर में जो कुछ उसे मिलता है, उसे खाकर प्रातःकाल फिर वह अपने स्थान को लौट जाता है। छलाँग मारने में यह मृग बहुत ही प्रवीण होता है ; और जब दौड़ता है, तब सीधा ही दौड़ता है। पहाड़ की चोटियों पर वह निर्भय दौड़ा करता है ; उसका पैर कभी नहीं फिसलता। वेग में आकर जब वह दौड़ता है, तब उसकी एक-एक छलाँग पचास-पचास, साठ-साठ फुट की होती है। जिस समय शिकारी उसे घेर लेते हैं, उस समय भागने में, वह हवा से बातें करता है। पहाड़ों के एक कगार से दूसरे कगार पर, वह तीर के समान जाता है और शिकारी उसे देखते ही रह जाते हैं। कस्तूरी-मृग के समान शीघ्र दौड़नेवाला जीव दूसरा नहीं।

कस्तूरी-मृग की नाभि में कस्तूरी उत्पन्न होती है ; वह नर ही की नाभि में होती है ; मादी की नाभि में नहीं । मांस और चमड़े के बीच में एक थैली-सी होती है । उसी में कस्तूरी भरी रहती है । उसके ऊपर चमड़े के कई पर्त रहते हैं ; कस्तूरी के कण होते हैं और प्रत्येक कण बंदूक़ के छर्रे के बराबर होता है । जब कस्तूरी नाभि से निकाली जाती है, तब उसका रंग कम काला होता है ; परंतु धीरे-धीरे वह गहरा काला हो जाता है । जो मृग तरुण होने पर मारे जाते हैं, उनकी नाभि से लगभग आधी छटाँक के कस्तूरी निकलती है । कम उम्र के मृगों की नाभि में कस्तूरी भी कम निकलती है ।

कस्तूरी ही के लिये इस मृग का शिकार किया जाता है । कोई-कोई पहाड़ी लोग कुत्तों की सहायता से इसे पकड़ते हैं और कोई-कोई जाल लगाकर उसमें इसे फाँसते हैं । इसे पकड़-कर वे मार डालते हैं और पेट से कस्तूरी निकाल लेते हैं । नाभि के भीतर कस्तूरी की जैसी थैली निकलती है, वैसी ही नक़ली थैली बनाकर कोई-कोई उसके भीतर कुछ काला-काला पदार्थ भर देते हैं और ऊपर से कस्तूरी का लेप लगाकर उसे कस्तूरी के नाम से बेचते हैं ; यहाँ तक कि पीने की तंबाकू तक उसके भीतर भरी हुई पाई गई है । इस प्रकार की झूठी कस्तूरी बहुधा बिकने आया करती है । इसलिये मनुष्यों को उसे लेने में साव-धान रहना चाहिए ।

[मई १९०५

५–उद्भिज्जाध्याय

कीट-ग्राहक पौधा

ईश्वर ने इस विशाल विश्व में ऐसे-ऐसे अद्भुत जीव-जंतु और लता-पत्रादिक उत्पन्न किए हैं कि उनको देखकर मनुष्य चकित हो जाता है और महानास्तिकों के भी मन में, उस समय, यह भावना उत्पन्न हो उठती है कि ऐसी-ऐसी आश्चर्यकारिणी वस्तुओं का उत्पादक कोई अवश्य होगा। मकरी को जाला लगाते और उसमें मक्खियों को फँसाकर उनका शिकार करते प्रायः सभी ने देखा होगा। तंतुओं के बने हुए अपने घर में वह, चुपचाप, योगी के समान समाधिस्थ-सी होकर, शिकार की मार्ग-प्रतीक्षा किया करती है और ज्यों ही कोई मक्खी अथवा और कोई कीटक उसके जाल पर गिरता है, त्यों ही वह बड़े वेग और बड़े आवेश से उस पर टूट पड़ती है। तालचंचु-पक्षी, अर्थात् अबाबील, भी एक प्रकार का फंदा लगाकर अनेक मक्खियों को एक ही साथ पकड़ लेता है। ऐसे-ऐसे उदाहरण इंद्रिय-विशिष्ट जीवों में तो पाए जाते हैं; परंतु इंद्रियहीन लता-पत्रादिकों में नहीं सुने गए। इंद्रिय-विशिष्ट जीवधारी अपने ही सदृश इंद्रियवान् जीवों और उद्भिज्ज पदार्थों पर अपना जीवन-निर्वाह करते हैं; और इंद्रियहीन वृक्ष इत्यादि अपने ही प्रकार के इंद्रियहीन पदार्थों को ग्रहण

करके उन पर अपना जीवन धारण करते हैं। यह नहीं देखा गया कि पेड़ चिड़ियों अथवा मक्खियों का शिकार करने लगें। परंतु ईश्वर परम लीलामय है। उसके रचना-चातुर्य का ज्ञान अल्पज्ञ मनुष्य को कदापि नहीं हो सकता। कभी-कभी वह अपनी अखंड शक्तिमत्ता का परिचय, ऐसे-ऐसे पदार्थ उत्पन्न करके, देता है जिनको देख मनुष्य को अपनी बुद्धि और विद्या के बल से बनाए हुए नियमों की असारता पर लज्जित होना पड़ता है। यहाँ पर हम, एक ऐसे पौधे का वर्णन लिखते हैं, जो मक्खी इत्यादि कीट पतंगों को अपने पत्ते-रूपी जाल में फँसाकर उन्हें मार डालता है और जब तक इच्छा होती है, तब तक उनके मृतक देह को अपनी पत्तियों के भीतर बंद रखता है।

संयुक्त देश अमेरिका में कैलीफोर्निया का उत्तरी भाग बहुत करके रेतीला है। यह पौधा वहीं उत्पन्न होता है। इसकी ऊँचाई ६ से १२ इंच तक होती है। इसकी पत्तियों के बीच से फूलों की एक नाल निकलती है। उसके अंत में छोटे-छोटे सफ़ेद फूलों के गुच्छे लगते हैं और लटककर पृथ्वी पर फैल जाते हैं। प्रत्येक पत्ती के दो भाग होते हैं और उनके बीच में एक रेखा-सी होती है। नीचेवाली की अपेक्षा ऊपर की पत्ती कुछ अधिक चौड़ी होती है। इन पत्तियों के प्रत्येक भाग में, दाहनी-बाईं ओर, फिर दो-दो भाग होते हैं। ऊपरी पत्तियों के चारों ओर आरे के सदृश लंबे-लंबे दाँत होते हैं। इस पौधे की पत्तियों के जो दो विभाग होते हैं, उनमें से ऊपरी भाग ही कीट-ग्राहक है; वही मक्खी इत्यादि जीवों को पकड़ता है। उसकी समता आँखों की पलकों से की जा सकती है। पलकों में जैसे बरोनियाँ होती हैं, इस पत्ती में वैसे ही दाँत होते हैं। जैसे पलकें बंद कर लेने से ऊपर और नीचे की बरोनियाँ

एक हो जाती हैं वैसे ही बंद होने पर, इस पत्ती के दाँत एक दूसरे में मिल जाते हैं और बीच की ख़ाली जगह में जमकर बैठ जाते हैं। पत्ती के ऊपर लाल रंग के दाने-दाने-से उभड़े रहते हैं। उसके बीच में जो रेखा है, उसके दोनों ओर का कुछ भाग भीतर की ओर गहरा होता है। इस गहराई अर्थात् गड्ढे में, दोनों ओर, तीन-तीन कटीले रोवें होते हैं। इन्हीं रोवों में इस पत्ती की ग्राहक शक्ति है। जैसे लाजवंती को छूने से वह सिकुड़ जाती है, वैसे ही इन रोवों का स्पर्श करने से पत्ती का ऊपरी भाग बंद हो जाता है। यदि कोई मक्खी अथवा कीड़ा पत्ती पर बैठ जाता है और इन रोवों में से एक अथवा अधिक को छू लेता है, तो पत्ती के दोनों किनारे सहसा एक दूसरे की ओर उठ जाते हैं और उसका भीतरी भाग तत्काल बंद हो जाता है। जिस समय पत्ती के किनारे उठने लगते हैं, उस समय उसका शिकार चाहे बचने का जितना प्रयत्न करे, सब निष्फल जाता है। एक निमिषमात्र में वह उस पत्ती के पेट में अपने को बंद पाता है। कीड़े के भीतर आते ही पत्ती के कँटीले रोवें उसे जकड़कर पकड़ लेते हैं और एक दूसरे से ऐसा मिल जाते हैं, जैसा मनुष्य के हाथों के दोनों पंजे मिलाने से परस्पर मिल जाते हैं। जाल में, इस प्रकार, फाँस लिए जाने पर वह कीड़ा न तो दबाकर ही मार डाला जाता है और न रोवों के द्वारा छेदकर ही उसके जीवन की समाप्ति कर दी जाती है ; अपनी पत्तीरूपी काल-कोठरी में कीड़े को बँधुआ बनाकर पौधा उसे तब तक वहाँ पड़ा रहने देता है, जब तक वह अपना हिलना-डुलना बंद नहीं करता। जब वह मर जाता है, तब उसका हिलना-डुलना बंद हो जाता है, और तभी वह शिकारी पौधा अपनी पत्ती को खोलकर फिर उसे पहले के समान फैला देता है। यदि इस पौधे की पत्तियों के कँटीले रोवों को मनुष्य छू लेता है, तो

भी वे तत्काल बंद हो जाती हैं और कुछ काल तक बंद रहने के अनंतर धीरे-धीरे खुलती हैं। उन्हें यदि कोई बार-बार छूता है, तो उनकी बंद होने की शक्ति क्रम-क्रम से क्षीण हो जाती है और जब तक उनको कुछ देर तक विश्राम न दिया जाय, तब तक उनकी ग्राहिका शक्ति पूर्ववत् जागृत नहीं होती।

[दिसंबर १९०२

प्राकृतिक दुर्घटना-सूचक पौधा

संसार विचित्रतामय है। उसमें एक-से-एक विचित्र बातें होती रहती हैं। जो बात किसी समय किसी के ध्यान में भी नहीं आती, वही दूसरे समय प्रत्यक्ष होकर दुनिया को चकित कर देती है। कौन जानता था कि किसी समय छोटे-छोटे पौधे भविष्यत् की बात बताने में बड़े-बड़े धुरंधर ज्योतिषियों के भी कान काटेंगे। अध्यापक नोवक-नामक आस्ट्रिया-देश के एक विद्वान् ने एक ऐसा पौधा ढूँढ़ निकाला है, जो सर्दी, गर्मी, आँधी, तूफ़ान, भूकंप, ज्वालामुखी पर्वतों के स्फोट इत्यादि भावी प्राकृतिक घटनाओं की सूचना पहले ही से दे देता है। यह पौधा अमेरिका के क्यूबा-नामक टापू में पाया जाता है। इसको अँगरेज़ी में Abrus Precatorius Nobilis कहते हैं। अध्यापक महाशय इसकी परीक्षा बहुत दिनों से कर रहे हैं। यों तो १८९२ ही में, उन्होंने इस पौधे के द्वारा आनेवाले छब्बीस वर्षों की घटनाओं का हाल बतला दिया था, जो अब तक ठीक-ठीक मिलता जाता है। पर अब वे इस काम को नियमानुसार स्थायी रूप से करना चाहते हैं। इसके लिये वे लंदन में एक बेधशाला स्थापित करने का प्रबंध कर रहे हैं।

अध्यापक महाशय ने, इस पौधे की जाँच-पड़ताल करने में बड़ा कठिन परिश्रम किया है। दिन-रात वे इसी की धुन में लगे रहते थे। अंत में उनकी मिहनत सफल हुई। उनको पता लगा कि पृथ्वी या वायुमंडल के आकर्षण-धर्म या विद्युत्प्रवाह में यदि ज़रा भी फरफार होनेवाला होता है, तो इस पौधे से उसका ज़रूर पता लग जाता है—इसकी पत्तियाँ और टहनियाँ नाना प्रकार के रूप-रंग धारण करने लगती हैं। इनमें से प्रत्येक रूप-रंग एक विशेष घटना का द्योतक होता है। कल्पना कीजिए कि यदि सूर्य में एक इतना बड़ा धब्बा दिखलाई दे, जिसका प्रभाव हमारी पृथ्वी पर पड़ सकता हो, तो पौधे की उस ओर की टहनियाँ, जिस तरफ़ असर पड़नेवाला है, ऊपर-नीचे एक विशेष प्रकार से हिलने लगेंगी। अध्यापक महाशय उनके हिलने के रंग-ढंग और दिशा को देखकर फ़ौरन् बतला देंगे कि हमारी पृथ्वी के किस देश में, कितना, और किस प्रकार का गड़बड़ होनेवाला है।

अध्यापक महाशय लंदन की बेधशाला के लिये कोई चौदह सौ पौधे बड़े-बड़े कष्ट उठाकर क्यूबा से लाए थे। उनमें से अब केवल एक पौधा चैतन्य अवस्था में रह गया है; बाक़ी सब मुरझा गए। इस एक पौधे की लागत कोई पंद्रह हज़ार रुपए हैं! पौधों का लाना तो व्यर्थ ही हुआ। पर बीजों का लाना बड़े काम आया। वे क्यूबा की-सी आबोहवा और मिट्टी में बो दिए गए हैं और उग भी आए हैं। अभी ये केवल कुछ ही महीनों के हैं। बीस से अधिक पत्तियाँ किसी में नहीं। जब तक प्रत्येक पौधे में डेढ़-दो सौ पत्तियाँ न हो जायँगी, तब तक वे भविष्यत् की घटना बताने में असमर्थ रहेंगे। साधारण रीति से इतनी पत्तियाँ कोई दो साल में आती हैं। पर इसका विशेष उद्योग किया जा रहा है कि वे अगली फ़सल में कम-से-कम इस योग्य हो जायँ

कि भावी ऋतु की सूचना पहले से दे सकें। पौधों की अनुभव-शक्ति रात को बढ़ जाती है। अध्यापक महाशय नित्य तीन-चार बजे सबेरे अपने पौधों की देख-भाल करने जाते हैं; क्योंकि उसी समय उनके रंग-ढंग अधिक बदलते हैं। पौधों में एक बात बड़े आश्चर्य की है। वह यह कि उन पर भिन्न-भिन्न प्रकार के मनुष्यों का भिन्न-भिन्न असर पड़ता है। मालूम होता है कि कोई वक़्त आवेगा, जब ये पौधे मनुष्यों के संबंध में भी अपनी करामातें दिखाकर लोगों को चकित करेंगे। इसीलिये तीन आदमियों से अधिक एक समय में वेधशाला के अंदर नहीं जाने पाते।

पौधे की सूरत-शकल में कुछ भी विचित्रता नहीं। उसमें फूल भी नहीं होते। केवल एक पतले लंबे डंठल में छोटी-छोटी टहनियाँ होती हैं, जिनमें हलकी-हलकी पत्तियाँ रहती हैं।

अध्यापक नोवक आस्ट्रिया-देश के एक अमीर आदमी हैं। जब उन्होंने इस पौधे के अद्भुत गुणों की खोज कर ली थी, तब उनकी उम्र कुछ अधिक न थी। पर इस खोज ने उनके जीवन-पथ को बदल दिया। अपनी इस खोज से संसार को लाभ पहुँचाने के लिये इन्होंने थोड़ी ही उम्र में सरकारी नौकरी छोड़ दी और तन, मन, धन से इस काम में जुट गए।

पहलेपहल १८८८ ईसवी में वीना की प्रदर्शिनी में उन्होंने इस पौधे की आश्चर्य-जनक करामातें दिखलाईं। तत्कालीन राजेश्वर सप्तम एडवर्ड उस समय वीना ही में थे। एक दिन शाम को वे एक भोज देनेवाले थे। अध्यापक नोवक ने, इस पौधे की सहायता से उनको सूचना दी कि भोज के समय बड़ा भारी तूफ़ान आनेवाला है। उनकी भविष्यद्वाणी ठीक निकली। भोजन के समय एक भयंकर तूफ़ान आया। सब लोग बड़े आश्चर्य में आ गए। सप्तम एडवर्ड अध्यापक महाशय की खोज से बड़े प्रसन्न

हुए और उनको इँगलैंड आने के लिये निमंत्रित किया। यही कारण है कि नोवक साहब ने आस्ट्रिया छोड़कर लंदन में अपना प्रधान कार्यालय स्थापित किया है। लंदन और बीना में तो बेधशालाएँ स्थापित हो ही चुकी हैं; न्यूयार्क में भी खुलनेवाली हैं। उसके बाद बंबई, टोकियो और सानफ्रांसिस्को में भी एक-एक बेधशाला खोली जायगी।

अध्यापक महाशय ने धनाभाव के कारण अब तक इस काम को शुरू नहीं किया था। उनकी इच्छा है कि केवल एक ही व्यक्ति या कंपनी नहीं, किंतु सारी दुनिया इससे लाभ उठावे। इसीलिये फ़्रांस, जरमनी, टर्की, आस्ट्रिया और रूस की गवर्नमेंटों तथा कई कंपनियों के बहुत लालच दिखलाने पर भी उन्होंने इसका पूर्ण अधिकार किसी को नहीं दिया।

अध्यापक महाशय ने, इस अद्भुत पौधे की सहायता से जितनी भविष्यद्वाणियाँ कही हैं, वे अब तक बिलकुल सही निकली हैं। सन् १८९२ ईसवी में, उन्होंने आनेवाले छब्बीस वर्षों की समस्त प्राकृतिक घटनाओं का विवरण-पत्र इँगलैंड की बड़ी-बड़ी वैज्ञानिक सभाओं के सुपुर्द किया था। उसमें लिखे हुए भविष्यत् कथन अब तक सब पूरे उतरे हैं। पूर्वोक्त विवरण-पत्र के अनुसार फ़ारिस के तेहरान नगर में, थोड़े ही दिनों में कोई भयंकर घटना होनेवाली है। उसके बाद ही हवाना-नामक स्थान में कुछ गड़बड़ होगी। १८९८ ईसवी में कोलंबिया में, भयानक भूकंप आवेगा। १८९२ ईसवी में नोवक साहब ने इटली के बादशाह को सूचना दी कि १८९३ के जून और अगस्त के बीच में एटना और विस्यूवियस नाम ज्वालामुखी पर्वतों में विषम स्फोट होंगे और सिसिली टापू में लगातार कई भयानक भूकंप आवेंगे। घटना ठीक वैसे ही हुई, जैसी की कही गई थी। रत्ती भर भी अंतर नहीं पड़ा। ता० १४

जुलाई सन् १८९४ को अध्यापक महाशय ने वीना के तुर्की एलची को सूचना दी कि कल कांस्टेनटिनोपुल में भूकंप आनेवाला है। दूसरे ही दिन भविष्यत् कथन को सच्चा होता देख सबको महा-आश्चर्य हुआ। टर्की के सुलतान तो दाँतों-तले उँगली दबाकर रह गए। १८९५ के एड्रियानोपुल तथा १९०२ के सालोनिका के भूकंपों की सूचना भी उन्होंने पहले ही से दे दी थी। मई १९०३ ईसवी में, जो भूकंप कांस्टेनटिनोपुल में हुआ था, उसका हाल भी तीन महीना पहले उन्होंने खुद बादशाह से कह दिया था।

जो जहाज़ तूफ़ान आदि के द्वारा समुद्र में डूब जाते हैं, मालूम होता है, इस पौधे के द्वारा उनके डूबने की सूचना भी पहले से मिल जाया करेगी। इस प्रकार संसार की भयंकर घटनाओं का ज्ञान पहले ही से हो जाने से उनको रोकने का उपाय किया जा सकेगा और उनसे जो अनंत प्राण और धन का नाश होता है, उसमें कमी हो जायगी। इससे मनुष्य-जाति का जो उपकार होगा, वह अकथनीय है।

[जुलाई १९०८

६—प्रकीर्णकाध्याय

अद्भुत जीव-जंतु

ईश्वर ने संसार में कोई-कोई जीव-जंतु बहुत ही अद्भुत बनाए हैं। उसकी सारी सृष्टि अद्भुतता की खान है। कहीं चिउँटी के समान छोटा जीव, कहीं हाथी के समान पर्वतप्राय चौपाया, कहीं सर्प के समान प्राणहारक प्राणी, कहीं सर्प ही को खा जाने-वाले गरुड़ और नेवले आदि जीव, कहीं रंग-बिरंगी चिड़ियाँ, कहीं प्रकाशमान पतंग, कहीं अद्भुत-अद्भुत मछलियाँ, कहीं मनुष्य के आकार से मिलते हुए अद्भुत-अद्भुत बंदर! पर सब जीव सब कहीं नहीं पाए जाते। कोई कहीं होता है, कोई कहीं।

हमारे देश में सैकड़ों तरह के कीड़-मकोड़े होते हैं। उनमें से एक का नाम झींगा है। हमारी तरफ़ उसका यही नाम है। और प्रांतों में शायद उसे लोग कुछ और ही कहते हों। यह एक बहुत छोटा कीड़ा है। यह चार या पाँच अंगुल से अधिक बड़ा नहीं होता। पर अमेरिका में इस जाति का एक बहुत ही बड़ा कीड़ा मिला है। वह वहाँ के अजायबघर में एक अजीब चीज़ समझकर रक्खा गया है। वह कुछ कम चार फ़ुट लंबा है—अर्थात् लगभग तीन हाथ! वज़न उसका १८ सेर है! उसके अगले

आँकड़े इतने बड़े हैं कि वह एक बहुत मोटे-ताज़े आदमी की कमर को अगर पकड़े, तो उनसे उसे वह पूरा घेर ले और उनका कुछ हिस्सा बच भी जाय !

लेमर-नामक एक जीव बिल्ली की तरह होता है। वह मैडेगास्कर, सुमात्रा, जावा, बोर्नियो और फिलीपाइन नाम के टापुओं में बहुत रहता है। उसकी कई जातियाँ हैं। एक जाति के लेमर की पूँछ बहुत बड़ी होती है। सिर और शरीर की लंबाई से भी पूँछ की लंबाई अधिक होती है। पूँछ पर बहुत मुलायम बाल होते हैं। उसमें अनेक घेरे या छल्ले होते हैं। इससे वह बड़ा सुंदर मालूम होता है। यह जीव पेड़ों पर तो रहता है, पर बंदरों की तरह नहीं सोता। वह डाल को पकड़कर नीचे लटक जाता है और चमगीदड़ों की तरह सिर नीचा करके सोया करता है। यह जीव रात्रिचर है। पर किसी-किसी जाति के लेमर दिन को भी बाहर निकलते हैं। रात को ये जीव, सूर्यास्त होते ही, अपने शिकार की तलाश में निकलते हैं। फल, फूल, कोमल-कोमल पत्तियाँ, पतंगे और चिड़ियों के अंडे इनकी खूराक है। इनकी आँखें, बिल्ली और उल्लू की आँखों की तरह पीली-पीली होती हैं। ये दिन को छोटी और रात को बड़ी हो जाती हैं। यह प्राणी बड़ा खिलाड़ी है। अजायबघरों में पिंजड़े के भीतर रात को इसकी कुतूहल-जनक कूद-फाँद देखकर देखनेवालों के पेट में हँसते-हँसते बल पड़ जाते हैं। धारीदार पूँछवाले लेमर पेड़ों पर कम रहते हैं। वे पहाड़ों की खोहों में रहना अधिक पसंद करते हैं और बहुत करके दिन ही को बाहर निकलते हैं, रात को नहीं।

लेमरों की जितनी जातियाँ हैं, उनमें एक जाति बहुत सुस्त और मंदगामिनी है। संसार में और कोई जीव इतना मंद गमन नहीं करता, जितना इस जाति के लेमर करते हैं। एक दफ़े इस तरह के

एक लेमर ने एक बड़े-से पतंगे को देखा। वह उससे चार फुट के फ़ासिले पर था। पर इतनी दूर चलकर उसे पकड़ने में उसको ३२ मिनट लगे! यदि इस जाति के लेमर फल, फूल, पत्तियाँ और नरम जड़ें न खाते, तो कीड़ों-मकोड़ों वग़ैरह का पकड़ना इन्हें कठिन हो जाता। इस दशा में वे शायद ही भूखों मरने से बचते। पर ईश्वर ने सबके लिये ऐसी खूराक निश्चित की है, जिसे प्राप्त करने का पूरा साधन उसके पास है।

चिड़ियों का नाम पक्षी है, क्योंकि उनके पक्ष अर्थात् पंख होते हैं। परंतु एक ऐसी भी चिड़िया होती है, जिसके पंख ही नहीं होते। यह चिड़िया न्यूज़ीलैंड में होती है। उसकी आवाज़ से "किवि-किवि" शब्द निकलता है। इसलिये उसका नाम "किवि-किवि" ही पड़ गया है। इस तरह की कोई एक दर्जन चिड़ियाँ लंदन के अजायबघर में हैं। यह चिड़िया बिलकुल ही नहीं उड़ सकती है। इसके बदन पर लंबे-लंबे बाल होते हैं। यह कीड़े उठा-उठाकर खाती है। यह चिड़िया साधारण मुर्गी के आकार की होती है। पर इसका अंडा बहुत बड़ा होता है। नाप में वह ५ इंच लंबा और ३ इंच चौड़ा होता है!

नेपाल में एक बहुत ही अद्भुत चिड़िया होती है। उसके पैर छोटे-छोटे होते हैं, पर चोंच उसकी बे-तरह बड़ी होती है। वह चोंच क्या है, एक तरह का सींग है। इस तरह की चिड़ियाँ अब बहुत कम मिलती हैं। इसका एक नमूना बड़ी मुश्किलों से मिला है। वह हमारे अँगरेज़-राज ने अपनी विलायती जंतुशाला में रक्खा है।

सुमात्रा और बोर्नियो में एक विचित्र तरह के बंदर पाए जाते हैं। उसका नाम है "औरंग-औटंग", "औरंग" का अर्थ है सरदार और "औटंग" का जंगली अर्थात् जंगल का सरदार।

इन बंदरों का आकार आदमी के आकार से बहुत मिलता है। यह बुद्धिमान् भी बहुत होता है। डीलडौल इसका बहुत बड़ा होता है और मुश्किल से पकड़ा जाता है। इस जाति के बंदर का एक बच्चा पकड़कर लंदन में लाया गया है। यह जाड़े में कपड़े ओढ़कर बैठता है। इसे देखने के लिये लोगों की बड़ी भीड़ रहती है।

[जुलाई १९०६

तीस लाख वर्ष के पुराने जानवरों की ठठरियाँ

प्राचीन काल में कुछ जानवर ऐसे होते थे, जो आजकल नहीं पाए जाते। डिनोसार जात्यंतर्गत ट्रैचोडोंट शाखा के रेंगनेवाले प्राणी भी ऐसे ही जानवरों में हैं। उनकी दो ठठरियाँ न्यूयार्क (अमेरिका) के अजायबघर में रक्खी हैं।

इस जानवर की ठठरियाँ अब तक योरप और अमेरिका में बहुत पाई गई हैं। पर ये दोनों ढाँचे ऐसे पूर्ण और जुदी-जुदी हालतों में हैं कि इनकी परीक्षा करने में बड़ा सुभीता होता है।

विद्वानों का अनुमान है कि यह जानवर तीस लाख वर्ष पहले होता था। उस समय डिनोसार-जाति की अन्य शाखाओं की अपेक्षा ट्रैचोडोंट शाखा के जानवर बहुत अधिक थे। इन ठठरियों के रंग-ढंग से मालूम होता है कि जिस समय में ये मरे हैं, उस समय दोनों चर रहे थे। उनमें से एक अपने किसी वैरी जानवर के आ जाने से चौंक पड़ा है और उँगलियों के बल खड़ा हो गया

है। दूसरे को आनेवाली विपत्ति का ज्ञान नहीं है। वह चुप-चाप चरने में मग्न है। इतने प्राचीन काल की घटना के इस अनुमान के ठीक होने में संदेह नहीं करना चाहिए। क्योंकि जिस समय हम इसके ढाँचे को और तत्कालीन पत्तियों, झाड़ियों, पेड़ों के तनों और फलों के चिह्नों को ध्यान-पूर्वक देखते हैं, उस समय इस अनुमान के सिवा और कोई अनुमान हो ही नहीं सकता। खड़ी ठठरी के पिछले बाएँ पैर पर तीन घाव हैं। वे इस जीव के किसी वैरी के किए हुए हैं। उन्हें देखकर यह अनुमान और भी दृढ़ हो जाता है।

जैसा हम पहले कह आए हैं, ट्रैचोडोंट तीस लाख वर्ष पहले होता था। उस समय ये जानवर योरप और अमेरिका के कई स्थानों में पाए जाते थे। विशेषकर अमेरिका के न्यूजर्सी, मिसी-सिपी, अलबामा, बोमिंग, मोटाना, डकोटा आदि स्थानों में। क्योंकि यहीं इसकी ठठरियाँ अधिकता से पाई गई हैं।

जब इस जाति के जानवर का वंश नाश हुआ, तबसे अब तक इसकी ठठरियों के ऊपर आटलांटिक महासागर के किनारों पर कई हज़ार फुट ऊँची चट्टानें जम गई हैं। भूगर्भ-विद्या-विशारदों का कथन है कि इन चट्टानों की इतनी तहें तीस लाख वर्ष से अधिक ही काल में जम सकती हैं। इससे आप इन ठठरियों की प्राचीनता का अनुमान कर सकते हैं।

अमेरिका की पश्चिमी रियासतों में पहाड़ियों और घाटियों की बड़ी अधिकता है। इन्हीं पहाड़ियों के पास एक अत्यंत ऊबड़-खाबड़ जगह में यह खड़ी ठठरी सन् १६०४ में पाई गई थी। जिस आदमी ने इसे पाया था, उससे १६०६ में न्यूयार्क के अजायब-घर के प्रबंध-कर्ताओं ने ख़रीद लिया था।

दूसरी ठठरी डकोटा रियासत की मेरो नदी के पास मिली थी।

इसे अध्यापक कोप नाम के एक साहब के आदमियों ने १८८२ ईसवी में पाया था। उन्होंने बड़ी मुश्किल से, बहुत कहने-सुनने पर, इसे अजायबघरवालों के हाथ बेचा।

ट्रेचोडोंट जानवर की गिनती रेंगनेवाले जीवों में है। उसकी अगली टाँगें बहुत छोटी होती थीं। पर पिछली टाँगें और पूँछ खूब लंबी होती थी। दाँतों की बनावट से मालूम होता है कि यह जानवर मांस-भक्षी न था; किंतु फल, मूल, घास, पत्ती आदि खाकर जीवन-निर्वाह करता था। इसका मुँह फैला हुआ होता था। बत्तख़ की तरह चौड़ी चोंच भी होती थी, जो एक हड्डीदार गिलाफ़ से ढकी रहती थी। उसके मुँह में सब मिलाकर दो हज़ार दाँत होते थे।

शरीर के अगले भाग की अपेक्षा पिछला भाग छःगुना अधिक बड़ा था। क़द और पैरों की हड्डियों के आकार से जान पड़ता है कि वह तौल में बहुत भारी न होता था। ठठरियों में अगले पैर के सिरे पर चार उँगलियाँ हैं। पर अँगूठा बहुत छोटा है। स्थूलाकार पिछली टाँगों में तीन लंबी-लंबी उँगलियाँ हैं, जिनके सिरे गाएँ-भैंसों के खुर की तरह जान पड़ते हैं। जब यह खड़ा होता था, तब इसकी उँचाई १७ फुट होती थी।

लंबी पूँछ से इस जानवर को पानी में, चलने में बड़ी मदद मिलती होगी। ज़मीन पर खड़े होने में भी यह बहुत सहायता पहुँचाती होगी। विद्वानों का अनुमान है कि इस जाति के जानवर बड़े बेढब तैरनेवाले होते थे। उनकी ठठरियाँ बहुधा ऐसी चट्टानों में पाई गई हैं, जो समुद्र के भीतर मग्न थीं। इन चट्टानों में समुद्री घोंघे, सीपी आदि भी पाई गई हैं।

आजकल जितने प्रकार के रेंगनेवाले जानवर जीवित हैं, उनमें से दक्षिणी अमेरिका के इगुवाना-नामक जानवर का स्वभाव और

चाल-ढाल इससे बहुत कुछ मिलती-जुलती है। ये जानवर वहाँ के गलपागोस-नामक टापू में झुंड-के-झुंड पाए जाते हैं। जो चीज़ें समुद्र में पैदा होती हैं, उन्हीं पर ये अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। ये जानवर साँप की तरह सारा शरीर और लंबी पूँछ हिलाकर समुद्र में बड़ी आसानी से तैरते हैं।

यह जानवर पानी में घुसकर मांस-भक्षी जंतुओं से अपनी रक्षा करता होगा। क्योंकि सींग आदि रक्षा करनेवाला कोई दृढ़ अंग इसके न होता था। इसका चमड़ा उभरे हुए छोटे-छोटे दानों से ढका रहता था। हाल ही में एक ऐसी ठठरी मिली है, जिसकी पूँछ की हड्डियों पर चमड़े के चिह्न हैं। इसकी हड्डियों के साथ तरह-तरह की पत्तियों, फलों और पेड़ों के तनों के चिह्न चट्टानों में अब तक रक्षित हैं। इस जाति के पेड़ वर्तमान समय में गर्म-देशों में पाए जाते हैं। इससे मालूम होता है कि उस समय की आबोहवा बहुत गर्म थी।

भूकंप आदि प्राकृतिक कारणों से अमेरिका महाद्वीप के ऊँच हो जाने से दलदलदार नीची भूमि लुप्त हो गई। आबोहवा भी गर्म की जगह ठंढी हो गई और पहले के जैसे पौधे, पेड़ आदि भी न रहे। इससे कितने ही जलचर जानवरों की भी वही दशा हुई, जो जल से बाहर होने पर मछलियों की होती है। इस जाति का जानवर जो सदा के लिये लुप्त हो गया, उसका मुख्य कारण यही है।

[एप्रिल १९०९

साहित्य-सुमन-माला

की

कुछ पुस्तकें

——:o:——

अग्नि-समाधि तथा अन्य कहानियाँ

[लेखक—हिंदी के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार श्रीप्रेमचंद]

हिंदी-साहित्य में श्रीप्रेमचंदजी की कहानियों का जो आदर है, वह किसी भी साहित्यसेवी से छिपा नहीं है। इस पुस्तक में उनकी सर्वश्रेष्ठ आठ कहानियाँ—१—अग्नि-समाधि, २—माँगे की घड़ी, ३—सुजान भगत, ४—दो सखियाँ, ५—पिसनहारी का कुआँ, ६—सोहाग का शव, ७—आत्म-संगीत और ८—एक्ट्रेस, दी गई हैं। प्रत्येक एक छोटा-सा उपन्यास का मज़ा देती है। अभी तक मुंशीजी के जितने संग्रह प्रकाशित हुए हैं, उन सब संग्रहों में यह सर्वश्रेष्ठ है। इस पुस्तक के संबंध में विशेष लिखना व्यर्थ है। मूल्य २)

मानव-शरीर-रहस्य

[लेखक—हिंदू-विश्वविद्यालय के चीफ़ मेडिकल ऑफ़िसर और आयुर्वैदिक कॉलेज के लेक्चरार डॉ० श्रीमुकुंदस्वरूपजी वर्मा बी० एस्-सी, एम्० बी० बी० एस्०]

हिंदी में वैज्ञानिक पुस्तकों का बिलकुल अभाव है। मनुष्य-शरीर की रचना और उसके कार्य के संबंध में अभी तक हिंदी-साहित्य में किसी भी लेखक ने पुस्तक को लिखने की कृपा नहीं की है। यह अपने ढंग की पहली ही पुस्तक है।

पुस्तक में लेखक ने मनुष्य के अंगों के चित्रों को स्थान-स्थान पर दिया है और उसी के आधार पर प्रत्येक अंग के कार्य का पूर्ण रूप से विवेचन किया है। भाषा इतनी सरल है कि भाषा का साधारण ज्ञान रखनेवाला मनुष्य भी पुस्तक के विषय का भाव पुस्तक को पढ़कर समझ सकता है। पुस्तक में लगभग ६०० पृष्ठ होंगे। मूल्य लगभग ५)

ठलुआ-क्लब

[लेखक—हिंदी-भाषा के सुप्रसिद्ध विद्वान् श्रीगुलाबरायजी एम्० ए०, एल्-एल्० बी०]

हास्य और व्यंग्य पर हिंदी में पुस्तकों का बिलकुल ही अभाव है। दो एक लेखकों ने अँगरेज़ी आदि भाषाओं के आधार पर कुछ पुस्तकें लिखी हैं, पर हास्य का अलौकिक आनंद उन लेखकों की पुस्तकों को पढ़ने से नहीं मिलता। आपकी सेवा में यह एक मौलिक पुस्तक भेट की जा रही है। बार-बार इसे पढ़िए और नया-नया आनंद लूटिए। भाषा और भाव में भी रोचकता पाइए। पुस्तक में १—मधुमेही लेखक की आत्म-कथा, २—बेकार वकील, ३—आफ़त का मारा दार्शनिक, ४—विज्ञापनयुग में सफल नवयुवक, ५—निराश कर्मचारी, ६—समालोचक, ७—प्रेमी वैज्ञानिक, ८—सिद्धांती, ९—आलस्य भक्त, नामक नव खेलों पर इस क्लब-घर में विचार किया गया है। मूल्य लगभग ।॥)

मिलने का पता—

नवलकिशोर-प्रेस (बुकडिपो),

हज़रतगंज, लखनऊ.